श्री

वेदान्तविचार.

संग्रही प्रसिद्धकर्ता

मनःसुखराम सूर्यराम त्रिपाठी.

"ब्रह्म सत्यं जगन्मिथ्या
जीवो ब्रह्मैव नापरः ॥"

(निर्णयसागरमुद्रालय.)

मुंबाइ सं० १९५५. मार्गशीर्ष, सन १८९८ इ०.

मूल्य रु. ०—४—०.

ॐ

श्रीवेदान्तविचार.

संग्रही प्रसिद्धकर्ता

मनःसुखराम सूर्यराम त्रिपाठी.

"ब्रह्म सत्यं जगन्मिथ्या
जीवो ब्रह्मैव नापरः ॥"

(निर्णयसागरमुद्रालय.)

मुंबाइ सं० १९५५. मार्गशीर्ष, सन १८९८ इ०.

प्रस्तावना.

(वेदान्तविचारनी)

मूल विस्तृतग्रंथगत विषयोनी अभिव्यंजिका.

आ 'वेदान्तविचार' रूप वन्द्यसेव्यवाक्यामृतसंग्रह, स्वबुद्धिनी विशुद्धिअर्थ तथा स्वात्माना–परमात्माना–अनुसन्धानार्थे आरंभ्यो छे ते क्रियमाण रहेवानो छे. संचित संग्रहनो कइं भाग, अधिकारीवर्ग अर्थे अत्र समर्पवामां आवे छे. सर्वान्तर्यामी प्रेरक परमेश्वरने प्रार्थना छे के, सज्जनोने यथाशक्ति ते उपयोगी थवा समर्थ थाय ए प्रकारे ए संग्रहने प्रेरे.

ॐ

परमात्मने नमः

वेदान्तविचार.

"वेदैश्च सर्वैरहमेव वेद्यो
वेदान्तकृद्वेदविदेव चाहम् ।"

भगवद्गीता अ० १५. श्लो०. १५.

श्रीभगवद्गीतामां श्रीकृष्ण भगवान् वदे छे केः—सर्वे वेदोए करी हुं (=परमात्मा)ज वेद्य (=वेदितव्य–जाणवा योग्य–छुं); वेदान्तकृत् (=वेदान्तना अर्थनो संप्रदायकर्ता) अने वेदवित् (=वेदान्तना अर्थनो ज्ञाता) ए पण हुं ज छुं.

वेदान्त.

'**वेदान्त**' नाम=वेदनो अन्त–अवसान किंवा निर्णय, अथवा वेदनो शिरोभाग. वेदोनी सर्व शाखाओना उत्तर भाग विषे पठ्यमान जे ग्रंथो,–अर्थात् प्रत्यगात्मभूत परमब्रह्म (ए) विशिष्ट**विषय**वती[2] अने आत्यन्तिक-संसारनिवृत्ति-ब्रह्मप्राप्तिरूप **प्रयोजन**वती (ब्रह्मात्मैक्यनो साक्षात्कार छे विषय जेनो एवी) प्रमाणभूता उपनिषदो–ए **वेदान्त**. अने ते अन्त श्रुतिओ उपनिषद् तेओने उपकारि

---

[1] आ लेखमां जे संमत होय ते प्रायशः शंकरोक्तिउपजीव्यक छे, अर्थात् ेपुरुषार्थदायिनी शंकरनी वाणीमांथी ज आ लेखनुं बहुकरी उपजीवन छे. तेमां जे संमत होय ते ज मात्र शंकरवाणीनुं गणवुं; अने भूमिति आदि सम तेने गुरुमुखथी वा तज्ज्ञाताथी अभ्यासवानी तथा स्वतः विचार-अपेक्षा छे. [2] विलक्षण, विशेषणयुक्त विषयवती=विचारयोग्य ेली.

शारीरक सूत्र-भाष्य, भगवद्गीता, आदि अध्यात्मशास्त्रो[1] पण गौणवृत्तिथी 'वेदान्त' कहेवाय छे.

वेदान्तशास्त्र.

प्रदीपवत् ते वेदान्तशास्त्रना प्रमाणथी ब्रह्मनो यथावत् स्वरूपाधिगमे[2] छे. कारण के ब्रह्म इन्द्रियादिप्रमाणक नहि किन्तु (श्रुति) शब्दप्रमाणक छे. ते यथाशब्द अभ्युपगन्तव्य[3] छे. मुख्यत्वे करी आत्माने उपदिदिक्षु[4] (वेदान्त) शास्त्र लोकबुद्धिने अनुसरतुं, (प्रथम) अत्यंत मूढोने आत्मत्वेकरी जे प्रसिद्ध एवा अनात्म अन्नमय शरीरनो अनुवाद करी, तेथी अन्तर् तेथी अन्तर्, एम पूर्वपूर्वसमान उत्तरउत्तर अनात्माने आत्मा एम ग्रहावी....सर्वांतर मुख्य आनंदमय आत्माने उपदेशे छे. सर्व वेदान्तोमां तात्पर्येकरी ब्रह्मना अर्थना प्रतिपादकत्ववते वाक्यो समनुगत[5] छे. हेयोपादेयशून्य ब्रह्मात्मताना अवगमथी ज, सर्व क्लेशना प्रहरणथी पुरुषार्थनी सिद्धि छे. यद्यपि अन्त्यप्रमाण वेदान्तशास्त्र अज्ञातार्थना[6] ज्ञापकत्वेकरी आत्माविषये प्रमाणत्व पामतुं नथी, किन्तु अतद्[7]-धर्माध्यारोपणमात्रनिवर्तकत्वेकरी प्रमाणत्व पामे छे; तथापि ब्रह्मज्ञानने भूतवस्तुविषयत्व[8] तथा अनुभवअवसानत्व होवाथी ब्रह्मजिज्ञासामां श्रुति आदि तथा अनुभवादि[9] यथासंभव प्रमाण छे.

सर्व वेदान्तशास्त्रनो आरंभ, कर्तृत्वभोक्तृत्वप्रवर्तक मिथ्याप्रत्ययरूप अनर्थहेतु नैसर्गिक[10] अध्यास तेना प्रहाणार्थ तथा आत्मैकत्वविद्यानी प्रतिपत्ति[11] अर्थ छे.

१ आत्मविषयक शास्त्र ते 'अध्यात्मशास्त्र.' शिष्योने अर्थे जेणेकरी तत्त्वं शासन किंवा प्रतिपादन थाय छे ए शास्त्र. २ पोताना रूपनुं ज्ञान थवुं ते. ३ श्रुतिशब्दार्थज्ञानेकरी जाणवा योग्य. ४ उपदेश करवाने इच्छतुं. ५ ब्र[illegible] परतामां पर्यवसित–अन्त–पामेलां. ६ न जाणेला अर्थने जणाववा ७ अनात्मधर्माध्यासने दूर करवापणुं. ८ सिद्धपदार्थ. ९ प्रतीति, १० अविचारसिद्ध, स्वाभाविक. ११ सिद्धि, सम्यक् ज्ञान.

सर्वार्थअवद्योति सर्वज्ञकल्प¹ वेदोरूप कल्पवृक्षनुं वेदान्त ए परमपुरुषार्थप्रद अनुपम अमृत फल छे. अथवा एवा विशिष्ट वेदोरूप कामधेनूनुं वेदान्त ए निःश्रेयसप्रद अमृत दुग्ध छे.

ज्ञानी-अज्ञानी सर्वेनी इच्छानो विषय², परमसुख परम आनन्द छे ते ज वेदान्तनो आत्मापरमात्मानी एकतारूप परमानन्दजनक विशिष्ट विषय छे. अविद्याए अध्यारोपित ईश्वरना सर्वज्ञत्वादि अने जीवना अल्पज्ञत्वादि विरुद्ध धर्मोना भागत्यागलक्षणाए परित्यागपूर्वक शुद्ध-सच्चिदानन्दाद्वैत ब्रह्मना यथार्थ ज्ञानेकरी नित्यप्राप्त स्वरूपना आत्यंतिक अखंड सुखनो आविर्भाव, एनुं वेदान्त ज प्रतिपादक अने संपादक छे.

वेदान्तनो विषय.

प्राणिमात्रनी इच्छानो विषय सुख छे, ए तो निःसंशय अने निर्विवाद छे. प्राणिमात्र जन्मथी ते मरणपर्यन्त जे सुखनी आशाए अनेक मार्गे, अनेक प्रकारे, अनेक प्रयत्नो करे छे; विद्याभ्यास, शरीरसंपत्ति, कृषि, व्यापार, सेवा, गृहस्थाश्रम; तनुबल, मनोबल, धनबल, कीर्ति, इत्यादि साधनोवते, जे सुखनी आशा होय छे ते सफला थशे एम कल्पीने, ते सुख संपादन करवा बहु परिश्रम वहे छे, अने अनेक दुःखो सहे छे; परंतु विचारकोने जे सुखाशा क्षितिजसम दूर अने दूर जती देखाय छे, अने अविचारी मूढोने तो जे सुखाशा असार संसारसागरमां बुडाडीने शोकमोहत्रस्त अने अति दुःखी करे छे; ते आशानां वास्तविक जे मूल [नि]त्यसुख तेने प्राप्त करवाने सम्यक्ज्ञान (अथवा ब्रह्मविद्या) [ज] एक सुलभ सुगम अने सुकर साधन छेः एम ते प्राप्य

---

[१] सर्वज्ञजेवुं. २ विषयीने स्वरूप साथे बांधे छे ते सुखादि. नित्य सेवित [सा]धन.

नित्य सत्य सुखना प्राप्तिमान् तथा प्रापक[1] महात्माओ स्वानुभवथी सिद्ध करी वदी गया छे अने वदे छे.

स्वप्रयोजननो अभाव सते पण अनुकंपाथी लोकोनो अनुग्रह करवा इच्छता ब्रह्मविद्याना संप्रदायना प्रवर्तक ते महात्माओनी एक श्रेष्ठपरंपरा आ प्रकारे छेः—

वेदान्तप्रवर्तकोथी वेदान्तनी श्रेष्ठतानुं प्रमाण.

सर्वान्तर्यामी आदिकर्ता नारायण[2], सृष्टिकर्ता पद्मभू-(ब्रह्मा)थी आदि लइने वसिष्ठ, शक्ति, पराशर, व्यास, शुक, गौडपाद, गोविंद, श्रीशंकराचार्य, अने तेओना शिष्यो-पद्मपाद, हस्तामलक, त्रोटकाचार्य, अने वार्तिककार सुरेश्वराचार्य आदिक-एओ तो सुप्रसिद्ध[3] ज छेः अने तेओना अनुयायी-वेदान्तार्थपारग एवा 'श्रोत्रिय,' ब्रह्मलोकना आनन्दथी ते अर्वाचीन[4] आनन्दमां तृष्णारहित एवा 'अकामहत', यथोक्तकारिताएकरी पापरहित एवा 'अवृजिन,' अने औपनिषद् ब्रह्मात्माना विज्ञाने परिपूर्ण एवा 'ब्रह्मनिष्ठ'-महात्मा गुरुओ एओए, परमश्रेयोर्थी साधनचतुष्टयसंपन्न यथोक्तकारी मुमुक्षुओना परमपुरुषार्थनी सिद्धिसारू, जे उत्तमोत्तम ज्ञान उपदेश्युं छे, ते ज ज्ञान सदा प्राप्त जे प्राप्य वस्तु—सच्चिदानन्द ब्रह्म—तेनी प्राप्तिनुं महासुखप्रद मुख्य अनुपम साधन छे, एवुं तेना प्रामाणिक वक्ताओनां अने तेओना परमप्रिय महाबुद्धिमन्त श्रोताओनां नाममात्रथी सिद्ध थाय एम छे.

ए परमनिःश्रेयसकरी सदानन्दमयी स्वाराज्यसाम्राज्

---

१ पमाडनार. २ चराचरात्मक शरीरोमां चिदाभास जे 'नार', ते 'अयन' नाम आश्रय—अन्तर्यामी—ए नारायण. ३ उपनिषद्–२ पाठानुसार. ४ अवर देशकालमां तत्कालवर्ति.

विभूति-अखंडसुखदात्री ब्रह्मविद्या—आदिनारायणना महाप्रसादथी ब्रह्माने प्राप्त थई; अने जेने महादेव परमप्रसादथी पोतानां परमप्रिया पार्वती प्रति प्रकाशी. ते परमपुरुषार्थप्रदा ब्रह्मविद्या ब्रह्माए वसिष्ठ इन्द्रादिने आपी; उद्दालक मुनिए आत्मज श्वेतकेतुने आपी; दक्षिणामूर्तिए सनत् सनकादिकोने बोधी; सनत्कुमारे नारदने प्रबोधी; याज्ञवल्क्ये स्वप्रिया मैत्रेयीने, अने जनकविदेहीने, अर्पी; वसिष्ठे सद्गुणमूर्ति लीलावतार श्रीरामने समर्पी, रामे यथोक्तानुकारी परमप्रिय भ्राता लक्ष्मणने दीधी; लीलावतार श्रीकृष्णपरमात्माए—जे ब्रह्मविद्या विष्णुरूपे प्रथम विवस्वान्-आदित्य-प्रति वदी हती, ते विवस्वाने मनु अर्थे प्रकाशी, मनुए स्वपुत्र आदिराज इक्ष्वाकु प्रति कथी, एम परंपराप्राप्त राजर्षिओए वदी; ते पुरातनी उत्तमरहस्यब्रह्मविद्या—निज परमसखा इष्टभक्त अर्जुन प्रति कथी, अने ते ज ब्रह्मात्मविद्या कृपालुतापरवश शिष्टाग्रणी व्यासनारायणे तथा शंकरभगवाने सत्पुरुषोना अनुग्रहार्थे निर्वाणसंदायिनी वाणीद्वारा सुप्रसिद्ध करी छे.

ब्रह्मात्मविद्यानुं निरतिशय सुख.

ब्रह्मविद्या एवी विशिष्टमहिमावती अने महापुण्यशाली पुरुषोने कृतकृत्यकारिणी छे. ए ब्रह्मविद्याद्वारा जे अनुपम सुख,-मलविक्षेपरहित परिशुद्ध अन्तःकरणनी वृत्ति अन्तर्मुखी अने प्रशान्ता थइ द्रष्टानुं आत्मस्वरूपमां अवस्थान थये,—विद्वान्‌ने प्राप्त थाय छे, ते सुख भगवद्गीतामां आम गायुं छेः—

> "सुखमात्यन्तिकं यत्तद्बुद्धिग्राह्यमतीन्द्रियम् ।
> यं लब्ध्वा चापरं लाभं मन्यते नाधिकं ततः" ॥
>
> भ. गी. अ. ६ श्लो. २१-२२

भगवद्गीता अ. ४ श्लो. १-२.

'(अविषयजनित होवाथी श्रोत्र नेत्रादि इन्द्रियोए जाणवाने अशक्य एवुं) अति-इन्द्रिय, (इन्द्रियोनी निरपेक्षाए बुद्धिवते ज-स्वानुभववते ज-ग्रहण करीशकाय एवुं बुद्धिग्राह्य, (एकवार आविर्भाव थये पुनः क्वचित् पण नाश न थाय एवुं आत्मलाभनुं अनन्त) आत्यन्तिक सुख,–जेने (आत्मलाभने वा सुखने) लाभीने–पामीने–अपर लाभने (अन्यत् लाभान्तरने) तेथी अधिक छे एम (आत्मस्वरूपमां स्थित विद्वान्) मानतो नथी.'

जे सुखनी उपलब्धि थये देवादिनां अने नरपति आदिनां सुखो, सुखाभास जेवां लागी, तेओमां तुच्छबुद्धि थाय छे; जे सुख असाधारण बुद्धिमन्त शिष्टाग्रणी महात्माओए सेवित होवाथी उत्तमोत्तम छे, अने ते वर्गना महापुरुषोना अनुभवने आजी पण प्रसिद्ध छे; अने जे सुख असंख्य कारणोथी परमश्रेष्ठ छे एम विद्यावन्त विचारकोने सिद्ध छे; ते ज सुख ए वेदान्तप्रतिपादित अवर्णनीय अनुपम सुख छे.

सुखेच्छकने सुखस्वरूप, आप्त वाक्ये अने युक्तिए, सिद्ध करी आपी, सुखनो अनुभव करावी, आत्यन्तिक सुखमय करवा, अर्थात् ज्ञातात्मा–प्राप्तपरमपुरुषार्थ–कृतकृत्य–करवा, ए वेदान्तनुं प्रयोजन छे.

एवा वेदान्तविचारना प्रकाशक प्रवर्तक अने प्रापक महात्माओ केवा श्रेष्ठतम जगन्मंगल जगद्वन्द्य छे, ते तेओनां पूर्वोक्त नाममात्रथी जाणी शकाय एम छे. ब्रह्मविद्याना सारिष्ठत्व प्रदर्शनार्थे एथी अधिक प्रमाण शुं होई शके! ए वेदान्तनो विषय अने प्रयोजन पण तेवुं ज श्रेष्ठतम–मनुष्यमात्रने अभीष्ट एवुं-निःश्रेयस-सुख-छे; ए पण वेदान्तशास्त्र उपासकोने प्रसिद्ध छे.

ए वरिष्ठस्थिति किंवा मोक्षाख्य अत्युत्तम स्थान प्राप्त करवा, अधिकारी पण तेवा ज महाशय अपेक्षित छे.

अधिकारी.

यद्यपि आ वसुंधरा पृथिवी विषे सर्व पदार्थो छे तथापि योग्य अधिकारी विना ते पदार्थो प्राप्त थता नथी. पदार्थमात्रनी प्राप्तिविषये योग्य अधिकारीनी पूर्ण अपेक्षा छे, कारण अधिकारी अनुसार फलोदय थाय छे. सूर्यनो प्रकाश जे जे पदार्थो उपर पडे छे, ते पदार्थोमांथी निर्जीव पदार्थो ते प्रकाशे विकारी थई शुष्क अने निःसत्व थाय छे; सजीव पदार्थो पुष्टि पामी प्रफुल्ल थाय छे; मृत्तिकादि अपारदर्शक पदार्थो प्रकाशे छे; काच-स्फटिक-मणि आदि पारदर्शक पदार्थो ते प्रकाशथी प्रकाशे छे एटलुं ज नहि, किन्तु ते पारदर्शक पदार्थोनी तथा प्रभावर्धकउपधाननी[1] स्वच्छताना प्रमाणमां ते पारदर्शक पदार्थोमां ते प्रकाशक सूर्यनुं प्रतिफल किंवा प्रतिबिंब थाय छे, अने ते उपरथी पुनः परावर्तन थाय छे; अने सूर्यकान्तमणि विषे तो सूर्यप्रकाश प्राप्त थतां तेना सर्वांशनो—तेज तापदहननो—आविर्भाव थाय छे. ते मणिमां तो प्रतिबिंबपरावर्तनपूर्वक, ते सूर्यप्रकाशथी तेज तथा ताप तथा अधिकमां दहन (मूल किंवा अग्नि) स्वरूपे प्रकट थाय छे. अर्थात् बिंबभूत सूर्यना उष्ण-दहन-प्रकाश-समान प्रतिबिंबमां पण निरुपाधिक प्रत्यक् स्वरूप उष्ण-दहन-प्रकाशनो प्रत्यक्ष आविर्भाव थाय छे. एम अधिकारीना भेदे फलनो भेद थाय छे. ए नियम सर्वत्र वर्ते छे.

शास्त्रमां वेदान्तना अधिकारीनुं लक्षण आ प्रमाणे कह्युं छेः– (आ जन्ममां वा जन्मान्तरमां) विधिवत् अधीत[2] वेदवेदाङ्गत्वे करीने आपातथी[3] अधिगत[4] अखिल वेदार्थ जेणे, (अने बुद्धिनी शुद्धिअर्थे) आ

वेदान्त–अधिकारी.

१. डांक (Foil). २ अध्ययन करेला. ३ तात्कालिक–उपर उपरथी; आम ज छे एवा निश्चय विना. ४ जाण्यो छे.

जन्ममां वा जन्मान्तरमां निषिद्ध (कर्मना) वर्जनपुरःसर नित्य-नैमित्तिक-प्रायश्चित्त (कर्मना अनुष्ठानवते) तथा (चित्तना ऐकाग्र्यअर्थे) उपासनाना अनुष्ठानवते अखिल कल्मष[1]ता गयेली तेणेकरी नितान्त[2] निर्मल स्वान्त[3] छे जेनुं, ते (विवेक विराग षट्संपत्ति अने मुमुक्षुता ए) साधनचतुष्टय-संपन्न प्र[4]माता ए वेदान्तज्ञानना अधिकारी छे.

शास्त्रसांप्रदायिक लक्षण एवुं छे. परंतु देशनी दशामां अने कालना कारणमां अन्तर पडतां एवा अधिकारी अशक्य नहि तो विरल तो प्रतीत थाय छे ज. तेथी ए ज्ञेय अने प्रा[5]पक वेदान्तप्रतिपादक शास्त्र प्रसिद्ध सते, यथायोग्य प्रा[6]पक अधिकारी ज्ञाताना अभावे, प्राप्य जे अत्युत्तम आनन्दस्वरूप फल तेनी प्राप्ति पण क्वचित् ज थाय छे.

आ देशनी विकारिणी स्थिति.

आ भरतखंडनी भूमिउपरनी प्रजानी स्थिति पूर्वरूपनो त्याग करती अने रूपान्तरनी प्राप्ति कर्त्री एवी विकारवती अधुना छे. तेनुं सारूं परिणाम आवे ए हेतुथी तेमां संस्कार करवानी अपेक्षा छे. संस्कारना बे प्रकार छेः– द्रव्यान्तरना संयोगे करी आगन्तुक मलनी निवृत्ति (१) अने गुणनी प्राप्ति (२). आ देशनी आधुनिकी अवस्थामां उभय प्रकारना संस्कारनी संपूर्णा अपेक्षा छे. तेमां जे दोषरूप मल आव्या होय तेने दूर करवा रूप मलनिवृत्ति (१) अने एम शोधन थये नैसर्गिक गुणनो आविर्भाव अने वृद्धि स्वाभाविकी रीतिए थाय छे तेरूप गुणप्राप्ति (२).

---

१ मलिनता. २ अत्यन्त. ३ अन्तःकरण. ४ अन्तःकरणविषे प्रतिबिंबित चैतन्य अथवा लौकिक वैदिक व्यवहारोमां अभ्रान्त जीव, अत्र प्रमाता शब्दे विवक्षित छे. ५ पमाडनार. ६ पामनार.

" आर्यावर्त देशमां पूर्वे यथावत् वर्णाश्रमनी व्यवस्था
हती. ए वर्णाश्रम 'धर्म' कहेवाय छे. ए सर्व-
धर्म. धारक धर्मथी आ देशनी स्थिति सुखप्रदा
र्णाश्रमधर्ममां' ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, अने शूद्र,
'वर्ण'; तथा ब्रह्मचर्य, गृहस्थ, वानप्रस्थ, अने
, ए चार 'आश्रम', गणाता हता. तेओमां ब्राह्मण-
चारे आश्रमनो अधिकार गण्यो छे; क्षत्रियवर्णने
ास-आश्रम विना त्रण आश्रमनो अधिकार गण्यो छे;
वर्णने ब्रह्मचर्य अने गृहस्थ ए बे आश्रमनो अधिकार
ो छे; अने शूद्रने गृहस्थ-आश्रमनो अधिकार गण्यो छे.
उच्चवर्गीए अधिकाधिक भार सहन-वहन करवाना
ानुसार पूर्वपूर्व वर्णने एक एक आश्रमनो प्रयास
ो.

थतां पछी अज्ञान अने आलस्य वधी
जन्य अनेक विपत्तिओ आ देश उपर आवी
पडवा मांडी. परिणामे ए चतुर्वर्णना, बहु कार-
णोथी, अनेक विभाग थइ जइ ते वर्णोनी संख्या
वधीने एवी विघ्नकरा अने दुःखप्रदा थइ छे के निःसीमा.
'वर्णो'नी एम हानिकारिका वृद्धि थइ छे; अने 'आश्रम'नो क्षय
थयो छे. वानप्रस्थ तथा यथार्थ संन्यास आश्रमनो तो प्रायशः
लोप थयो छे. ब्रह्मचर्य[1] अने गृहस्थाश्रम प्रचलित छे, परंतु
तेओ पण यथेच्छ छे नहि.

एम आ देशनी विकारवती दशामां अभीष्टनो मुख्य हेतु
वर्णाश्रमधर्म अने तेनां साधन तेओनो विपर्यय थयाथी,
वेए साधनीय जे इष्ट सुख तेनो अभाव रहे ए यथाक्रम छे.

---

१ ब्रह्मचर्यनुं विद्याभ्यासअंग.

धर्मनुं स्वरूप आ कथ्युं छेः–जेना अनुष्ठानथी इष्ट ... लाभ, अने अनिष्टनो परिहार थाय एवो, ... रहित सदाचारी गुणाधिक मनुष्योए गृहीत ... ष्ठित, तथा आचरित, ते 'वर्णाश्रमधर्म'. धर्मनुं ... सिद्धान्त लक्षमां राखवानो छे केः–ज्ञायमान धर्म ... हेतु थतो नथी, किन्तु अनुष्ठीयमान धर्म पु... थाय छे. ज्ञायमान तो ब्रह्म ज पुरुषार्थहेतु थाय छे. ... श्रमना' धर्मने यथेच्छ अनुकूल देशकाल अवे छे ... एथी कोई इतर प्रकारनी व्यवस्था धर्मविषयमां अपेक्ष... छे. अने ते व्यवस्था दूरदर्शी महात्माओए वेदोक्तरीति... सूचवेली छे. तेओ द्विविध धर्म वदे छे.

धर्मस्वरूप.

प्राणीओना साक्षात् अभ्युदयरूप अभीष्टनो हेतु 'प्र... लक्षण' धर्म छे; अने ते आ ... कारण छे. अने निःश्रेयस[1] ... हेतु 'निवृत्तिलक्षण' धर्म ... ज्ञान वैराग्य अने आत्मज्ञाननिष्ठा छे.

प्रवृत्ति–निवृत्ति लक्षण धर्म.

पूर्वे 'प्रवृत्तिलक्षण' धर्ममां, आश्रमत्रयनां ... समास थतो. (१) प्रथम ब्रह्मचर्यनां स्वाध्यायनुं विधिवत् अध्ययन[2] आदि कर्तव्यो; ते करीने धर्मार्थे जिज्ञासा[3]पर्यन्तनो समावेश थतो; अने (२) द्वितीय गृहस्थाश्रमनां निषिद्ध-कर्मोना वर्जनपूर्वक काम्य-नित्य-नैमित्तिक-प्रायश्चित्तादि-कर्मोना अनुष्ठाननो अने सगुणब्रह्मनी उपासनानो समावेश थतो; अने (३) तृतीय परोपकारक्षम गृहस्थाश्रमथी आरंभीने वानप्रस्थाश्रमना अन्तपर्यन्त, अंतःकरणनी

१ सहेतुक संसारनो अत्यंत उपरम छे लक्षण (स्वरूप) जेनुं ते निःश्रेयस; अथवा निरतिशय सुखनो आविर्भाव अने निःशेष अनर्थनी उच्छिनाश-ए निःश्रेयस. २ विद्याभ्यास. ३ धर्मने जाणवानी इच्छा.

निर्मलता अने निश्चलता सारू सत्समागम अने सुच्छास्त्रना-श्रवण-मननादिए करी योग्य साधन संपादन करवामां करातो प्रवृत्तिनो समास थतो. अने 'निवृत्तिलक्षणधर्ममां' चतुर्थाश्रम—संन्यास—तत्त्वज्ञान, वासनाक्षय, मनोनाश, ब्रह्मनिष्ठतादि अन्तर्गत थतां.

अद्युणा प्रवृत्ति-धर्मना प्राबल्यनुं कारण.

आ कालमां प्रवृत्तिलक्षण धर्मनुं बल अधिक रहेवा संपूर्ण संभव छे. कारण "राजा कालस्य कारणं"= 'कालनुं कारण राजा छे.' ते राजकर्त्ताओनी प्रकृति ज अतिप्रवृत्ति छे. एथी प्रवृत्तिलक्षण-धर्मने बहु पुष्टि मलवानी ज.

ज्यां कारण प्रबल प्रवृत्त होय छे त्यां कार्यनो उद्भव अनिवार्य होय छे. एम छे तो अवे ते विषयमां मात्र व्यवस्था थवी ए ज प्राप्त कर्तव्य छे. संसारीने अभ्युदयफलप्रद प्रवृत्तिलक्षण-धर्म आरंभमां बहु प्रकारे उपयोगी अने उपकारक पण छे; अने तेथी पुनः विशेषमां ज्ञाननिष्ठा-योग्यतानी प्राप्ति थाय छे.

आ देशना स्वभाव-संबंधी विचार.

तथापि आ देशनी पूर्वनी, अने कइंक आ समयनी पण, स्थिति मति गति कृति तथा इतिहास उपर दृष्टि करतां आम अनुमान थाय छेः— बहु समयथी सुस्थायि[illegible] वंशपरंपरागता, अने मनुष्यमात्रे, बुद्धि अने अनुभव वधतां, अभिलषिता, जे निवृत्तिनी प्रकृति, ते आ देशमां स्वाभाविकी छे; ते निर्मूल थइ जाय ए तो असंभवित ज छे. प्राणिपदार्थनो कालनिमित्त विकार त्वराथी थाय छे, परंतु प्राणिपदार्थनो देशनिमित्त विकार विलंबे थाय छे.

पूर्वे कोई कोई काले बहु समर्थ पुरुषोए आ देशमां वर्तन करवा प्रयत्न कर्या छे. तथापि तेओने सिद्धि मली . अमुक काल सुधी तेओ बाह्यविकार करी अन्ते शमी

गया छेः अने आ आर्य देशनी दृढता अने स्थितिस्थापकता सबला अने सजीवा गणायि छे.

आ वेलामां आ पृथिवी उपरि शीघ्र गमनागमननां साधन बहु सुलभ थयां छे. एथी दूरता दूर थई गया जेवुं थयुं छे. खंडान्तरना अने देशान्तरना लोकोनो परस्पर व्यवहार अतीव वधतो जाय छे; स्वतंत्रता अने क्षमा ए स्वार्थसिद्धिमां उपयोगि साधन गणायां छे; अने तेनुं परिणाम आ थयुं छे के:–लोको, ज्ञात अज्ञात, स्वेच्छाथी ज परस्परना संसर्गजन्य गुणदोषोनुं ग्रहण करे छे. ते ग्रहण कोइवार विवेकपूर्वक होय छे. तथापि बहुवार मात्र तात्कालिकी स्वार्थसिद्धि सारू किंवा लोभार्थे ज होय छे. अने एम होय छे त्यारे तेथी पाशमां पड्या जेवुं थाय छे. एकवार अमुक पक्षमां पतित थया के पछी ते विषयमां ममता थइ अभिनिवेश थाय छे. जे कार्य पूर्वे समर्थ परिवर्तको बलात्कारे करी शक्या न हता, ते आज तात्कालिक स्वार्थदृष्टि उत्पन्ना थये अनायासे सहसा थई जाय छे.

प्रस्तुत समयनो प्रभाव.

नवीन संबंधना स्वार्थी आरंभमां एवुं प्रवर्तन स्वभावतः होय छे. तथापि आ आर्यदेश विचारप्रधान गणातो आव्यो छे. तेमां नवीन संसर्गसंबंधनो यथायोग्य अनुभव थये गुणदोषनी परीक्षा थइ, विवेकविचारपूर्वक दोषो दूर रखाइ, स्वदेश परदेशना केवल गुणनुं ग्रहण थाओ एम ईश्वरने प्रार्थना छे.

आ सृष्टिमां एक अचल नियम आवो प्रतीत थाय छे:– सर्व प्रवृत्ति प्रयोजनवती छे. प्रयोजनने उद्दिश्या विना मंद मनुष्य पण प्रवर्ते नहि. अने विचारकोने सर्वत्र मान्य छे के;–प्रवृत्तिमात्र प्रयोजन इष्टनिवृत्तिनी प्राप्ति छे. मनुष्यमा दिवसमां प्रवृत्ति करी रात्रिए निवृत्तिना सुखने अवश्य इ

एक नियम–प्रवृत्तिनुं पर्यवसान निवृत्ति.

छे. पूर्वावस्था विषे द्रव्यनुं उपार्जन करवामां मनुष्यो अतिश्रम सहे छे, ते उत्तरावस्थामां निवृत्तिना सुखनी आशा अर्थे ज छे. ए उपरथी सिद्ध थाय छे के, प्रवृत्तिरूप साधनथी जे साध्यफल अभिलषित छे ते निवृत्ति छे. अविचारीओ साधनमां ज सदा गुंथाई रहे छे. परंतु बुद्धिमान् विचारक सर्वत्र साध्य प्रति प्रवर्ते छे.

एम होवाथी ज्यारे ज्यारे जहि जहि विचारनुं बल प्रबल थशे त्यारे त्यारे तहि तहि प्रवृत्तिनुं पर्यवसान निवृत्तिमां आणवा लक्ष राखवुं, ए, जेम श्रेष्ठ गणातुं, अने अहुणा क्वचित् गणाय छे, तेम गणाशे.

प्रवृत्तिधर्मनो प्राचीन अर्वाचीन ब्रह्मचर्याश्रम.

प्रवृत्तिनिवृत्तिलक्षण द्विविध धर्म विषे, पूर्वे जे ब्रह्मचर्याश्रम गणातो अने जे आश्रममां गुरुकुलमां वसी आयुष्नो प्रथम चतुर्थभाग अध्ययनादिकर्मां वाववा मनुस्मृतिआदिमां विधान कर्युं छे, ते सदृश, अहुणा आ लोकमांना व्यवहारने उपयोगिनी विद्याकला यथाशक्ति संपादन करवामां आयुष्नो प्रथमभाग जाय छे. अने पछी गृहस्थाश्रमनो आरंभ थाय छे.

प्राचीन त्रिवर्ण अने गृहस्थाश्रममां प्रवृत्तिनां कर्मो.

प्राचीनकाले वर्णाश्रमानुसार गृहस्थाश्रम प्राप्त थतां, द्विजोने नाम ब्राह्मण-क्षत्रिय-वैश्य ए त्रिवर्णोने, धर्मसाधक त्रिविध कर्मो—अध्ययन[1], यजन[2], अने दान—तो समान गणातां. विप्र किंवा ब्राह्मणमां इतर त्रिविध कर्मो आजीविकानां साधनरूप विशेष गणातां. अने ते आ हतां:— अध्यापन[3], याजन[4], अने प्रतिग्रह[5]. क्षत्रियमां इतर क्षात्रकर्मो

[1] वेदवेदाङ्गोनो अभ्यास पोते करवो ते. २ यज्ञादिक्रिया इज्या-पोते करवी. [3] भणाववुं. ४ यज्ञ कराववा. ५ दक्षिणानुं ग्रहण करवुं.

आजीविकानां साधनरूप विशेष आ गणातां:– प्रजापालन, शस्त्र-अस्त्र-भृत्त्व किंवा शस्त्रास्त्रधारण. वैश्यमां इतर वैश्य कर्मो जीविकानां साधनरूप विशेष आ गणातां:– कृषि, वाणिज्य, कुसीद[1], पशुपालन. शूद्रनां प्रधान कर्म आ गणातां:– शुश्रूषा[2], विविध शिल्प, द्विजातिना हितनुं आचरण. राज्यसंबंधी अनेक अधिकारने उचित कर्मोना अनुष्ठानवते पण जीविका संपादन करवा कोइ वर्णने प्रतिषेध वा प्रतिबंध न हतो.

ए प्रकारे पूर्वे हतुं. साम्प्रतकालमां ए प्रवृत्तिलक्षणधर्म कइंक आ प्रकारे परिणाम पामतो अने प्रचार थतो जणाय छे.

अर्वाचीन गृहस्थाश्रम-मां प्रवृत्तिप्रकार.

मनु कलियुगने शूद्र कहे छे:—

"शूद्रः कलियुगः स्मृतः" ।

म. अ. १. श्लो. ८६.

ते तमोगुणरूप कलियुगमां शूद्रनुं जे प्रधान कर्म,– उपरिओनी 'शुश्रूषा' करवी– जे पूर्वे अधम गणातुं ते-उत्तम गणावा माड्युं छे. प्रस्तुतकाले विप्र, क्षत्रिय, वैश्य, अने शूद्र ए सर्व वर्ण सेवातत्पर अधिक जणाय छे. लोकमां प्रचलित कथन छे के:– 'उत्तम कृषि, मध्यम व्यापार, कनिष्ठ सेवा" ए लोकोक्तिनो विपर्यास थतो देखाय छे; परंतु वास्तविक तो सकलपुरुषार्थसाधक विद्याभ्यास ए ज सुब्राह्मणत्व छे. विद्याभ्यास विना अन्यत्र श्रम करवो ए शूद्रप्रायता छे.

बहु कारणोथी आ देश विकारावस्थामां छे. तेमां पूर्वावस्थानो परित्याग अने अवस्थान्तरनी प्राप्ति संपूर्ण थशे के नहि, ए तो संशयात्मक छे. तथापि ए विकारावस्थाथी आचार विचारना बाह्याकारमां विपरीतता प्रतीता थाय छे, ए प्रत्यक्ष छे.

१ व्याज उत्पन्न करवुं. २ सेवा.

ए प्रकारनी आ देशनी आधुनिकी स्थिति छे. तेमां प्राणीमात्रने अभीष्ट जे दुःखनी निवृत्ति अने सुखनी प्राप्ति, तेनां साधक साधन अने संपादकमार्ग कया छे ते यथावत् जाणवुं जोइए. अने ते ज्ञातव्य, प्रदीपवत् सर्व अर्थनां प्रकाशक जे अज्ञातार्थज्ञापक शास्त्र[1] तेथी ज, जाणी शकाय एम छे.

श्रेयःसाधक प्रवृत्ति-निवृत्ति-मार्ग.

ते इष्टनी प्राप्तिना अने अनिष्टना परिहारना उपायना प्रकाशन विषये तत्पर जे सर्वज्ञकल्प शास्त्र, ते शास्त्र, सर्व देशकालने अनुकूल थाय एवो प्रसिद्ध प्रवृत्ति-निवृत्तिलक्षण धर्मनो श्रेयःसाधक सन्मार्ग, उपदिशे छे.

आ नामरूपक्रियात्मक जगत् त्रिगुणात्मिका मायानुं परिणाम छे. ते ऐश्वरी मायाशक्तिने 'प्रकृति' पण कहे छे. ते प्रकृति 'अपरा' तथा 'परा' भेदथी द्विविधा छे. अनर्थकरी संसारबन्धनात्मिका जडभूता प्रकृति अपरा नाम निकृष्टा छे; प्राणधारणनिमित्तभूता जीवभूता प्रकृति परा नाम प्रकृष्टा छे. ते अपरा प्रकृति 'क्षेत्र' नामे पण कथाय छे, अने परा प्रकृति 'क्षेत्रज्ञ' नामे पण कथाय छे. क्षेत्र-क्षेत्रज्ञ, किंवा प्रकृति पुरुष, ए पर्याय छे. ए प्रकृतिद्वयद्वारा सर्वज्ञ ईश्वर जगत्नुं कारण छे.

ए सत्त्वरजस्तमोगुणात्मिका प्रकृतिमां सत्त्वगुणनो तथा तमोगुणनो अभिभव[2] थइने रजोगुण वधे छे, त्यारे रजोगुणनुं ार्य जे प्रवृत्ति ते थाय छे. ए प्रकारे प्रकृति,-माया,-अविद्या ते सर्वनी जननी छे, अने तेनुं कार्य प्रवृत्ति होवाथी,

ज्ञानना हेतु अनेक विद्यानां प्रस्थानोएकरी उपबृंहित-वर्धित-अने हि- ा शासन करनार ते शास्त्र. २ तिरस्कार, डबाण.

उत्पाद्यमाना सर्व सृष्टि प्रथम सहोदरा प्रवृत्तिना पक्षमां वर्ती, प्रवृत्तिने भजे छे अने प्रबला करे छे. एथी प्रकृतिस्थ पुरुष प्रकृतिना प्रवृत्तिपक्षमां प्रायशः आकर्षाय छे; ३ ने तेथी प्रवृत्तिलक्षणधर्ममां स्वभावथी ज सर्व पुरुष प्रेराय छे. एम होवाथी प्रथम प्रवृत्तिलक्षणधर्मनुं स्वरूप जाणवुं योग्य छे.

प्रवृत्तिलक्षणधर्म.

'प्रवृत्तिलक्षणधर्म'[1] ए समस्त पद 'कर्म'परत्व छे, एवो, प्रवृत्तिधर्मना आचार्य जैमिनिनो निर्णय छे. अर्थात् 'धर्म' शब्दनी अने 'कर्म' शब्दनी ए स्थले समानार्थता छे, ए पूर्वमीमांसाना संप्रदायविदोमां प्रसिद्ध छे. प्रवृत्तिलक्षणधर्मनुं कर्म ए बहिरंग छे. अर्थात् अन्तःस्थ धर्म छे ते कर्मद्वारा आकारी थइने दृष्टिगोचर थाय छे. धर्मसूत्रोमां:—'कर्मजन्य अभ्युदयनिःश्रेयसहेतु अपूर्वाख्य आत्मगुण 'धर्म'—एम कथे छे. ए प्रमाणे कर्मने धर्मनुं हेतुभूत गणीने, कारणकार्यनी अभेददृष्टिए उभय-धर्म कर्म-समानार्थ गणाय छे.

यद्यपि जगत्नी स्थितिनुं कारण जे प्रवृत्तिलक्षण धर्म तेनुं बहिरंग साधन जे कर्म ते कर्मनुं तत्त्व दुर्ज्ञेय छेः—

"गहना कर्मणो गतिः[2]—"

भ. गी. अ. ४ श्लो. १७.

तथापि तेनो स्वल्प सारसंग्रह कइंक आवो छेः—

[3]कर्म—क्रियते इतिकर्म—कराय छे ते कर्म,—व्यापारमात्र;

---

१ परमात्मा-ब्रह्मना ज्ञानरूप धर्मना ज्ञान अर्थ, ब्रह्मज्ञानना अंगभूत धर्म जेथी आ लोकमां पण सुखऐश्वर्य मले छे. २ कर्मनी 'गति' नाम याथात्म्य किं तत्त्व, गहना=विषमा—दुर्ज्ञेया—छे. ३ मनसहित सर्व ज्ञानेन्द्रिय तथा कर्मेन्द्रि तेओनो व्यापार ते कर्म. फलेच्छासहित किंवा सकाम अने फलेच्छारहित निष्काम एम द्विप्रकारनां कर्म छे. सकामकर्म अभ्युदयप्रापक छे; निष्क निःश्रेयसप्रापक छे. उभयमां विधि समान छे, परंतु संकल्पकृत भेद छे.

कर्म.

देहादिनी चेष्टा; कर्तानुं ईप्सिततम अने क्रियाए करी व्याप्यमान. आ जगत्रूप चक्रनी प्रवृत्तिनो हेतु कर्म छे. अर्थात् कर्ताना व्यापारोए करी जे सधाय, किंवा कर्तानी क्रियाओए करी जे प्राप्य, ते 'कर्म.' कर्ममात्र क्रियाजन्य छे अने धर्म-अधर्मनां जनक छे.

त्रिविध कर्म.

'कर्म' जे श्रुतिस्मृतिमां 'धर्म' नामथी प्रसिद्ध छे, ते कायिक-वाचिक–मानसिक चेष्टारूपे (क्रियारूपे) त्रिविध छे.

कर्मना प्रकारः- विहित अने निषिद्ध.

कर्मना बे प्रकार छेः–विहित अने निषिद्ध. जेमां इष्टसाधनताज्ञान हेतु छे एवुं, पुरुषने प्रवृत्तिना (करवाना) निमित्त वेदे बोधन कर्युं छे ते 'विहितकर्म;' अने जेमां द्विष्टसाधनताज्ञान हेतु छे एवुं; पुरुषने निवृत्तिना (न करवाना) निमित्त वेदे बोधन कर्युं छे ते 'निषिद्ध' कर्म छे. ए विहित निषिद्ध कर्मने धर्म-अधर्म कर्म, पण कथे छे. धर्मकर्मनुं फल, अनुकूल विषयना तथा इन्द्रियना संयोग (तेणेकरी) जन्य (एवुं) सुख छे; अने अधर्मकर्मनुं फल, प्रतिकूल विषयना तथा इन्द्रियना संयोग (तेणेकरी) जन्य (एवुं) दुःख छे. अने ते सर्व सुखदुःख शरीरवाक्मनेकरी भुज्यमान छे.

'विहितकर्म'ने केवल 'कर्मनी' अने 'निषिद्धकर्मने' 'विकर्म'नी संज्ञा छे. ए प्रकारद्वयथी शेष जे तूष्णींभाव ते 'अकर्म' कहेवाय छे.

यद्यपि विहित-निषिद्ध कर्म, धर्म-अधर्मनां जनक छे, तथापि ते बेथी शेष रहेती जे स्वभावसिद्ध क्रियाओ छे,–के गमन, आगमन, शौच, इत्यादि उदासीन सहज क्रि-–ते क्रियाओरूप कर्म, धर्माधर्मनां जनक नथी गणातां.

'विहितकर्म' ए शुद्धि, उपासना, यज्ञादिक, शुभकर्म छे. ते शुभकर्म, स्वअनुष्ठानद्वारा पुण्यरूप अपूर्वनुं[1] जनक छे, अने स्वर्गादिफलक छे; अने तेथी इष्टदेवयोनि प्राप्त थाय छे.

'निषिद्धकर्म' ए अशुद्धि, असत्य, हिंसादिक अशुभकर्म छे. ते अशुभकर्म, स्वअनुष्ठानद्वारा पापरूप अपूर्वनुं जनक छे; अने नरकादिफलक छे, अने तेथी अनिष्टतिर्यगादियोनि[2] प्राप्त थाय छे.

मिश्रकर्म.

ए विहित-निषिद्ध किंवा शुभाशुभ उभयविध कर्मनो समावेश जेमां थाय छे ए 'मिश्रकर्म' छे. ते मिश्रकर्म, स्वअनुष्ठानद्वारा पुण्यपापरूप अपूर्वनुं जनक छे, अने उच्चावच मनुष्यजन्मफलक छे, तेथी व्यामिश्र मनुष्य जातिमां उच्चावच योनि प्राप्त थाय छे. तेमां अधिक पुण्य अने न्यून पाप जे मनुष्यमां प्रतीत थाय ते मनुष्य, देवसमान गणाय छे; अने अधिक पाप अने न्यून पुण्य जे मनुष्यमां प्रतीत थाय ते मनुष्य, पशुसमान गणाय छे.

ए शुभ, अशुभ, अने मिश्र, कर्मने, कोई 'शुक्ल,' 'कृष्ण' अने 'कृष्णशुक्ल' एवी संज्ञा पण आपे छे.

विहितकर्मभेद.

विहितकर्म वळी चतुर्विध छे;–नित्य (१) नैमित्तिक (२) काम्य (३), अने प्रायश्चित्त (४).

पुनः प्रकारान्तरे सात्त्विक (१), राजस (२), अने तामस (३), भेदथी कर्म त्रिविध छे; अने तेओनां अनुक्रमे फल,– सुख, दुःख, अने मोह,–छे; किंवा प्रकाश[3], प्रवृत्ति, अने प्रमाद, छे.

ए शुभ-अशुभ कर्मो पोताथी अव्यवहित[4] उत्तरकाल

---

१ कर्मनी सूक्ष्मावस्था अने फलनी पूर्वावस्था ए अपूर्व कहेवाय छे, अदृष्ट पण कहेवाय छे. २ पशुजन्म. ३ ज्ञान. ४ अंतरायरहित.

अनुक्रमे धर्म-अधर्मनी किंवा पुण्य-पापनी उत्पत्ति करे छे. ते धर्माधर्म अन्तःकरण विषये (वासनारूपे—बीजरूपे) रहे छे; अने कालान्तरे तेओनां फलरूप सुख-दुःख थाय छे.

सुख दुःखना हेतु कर्म छे.

ए प्रकारे शुभ-अशुभ कर्मो ज धर्म-अधर्मरूप अपूर्वद्वारा सुख-दुःखरूप फलना हेतु छे. परंतु ए बीजो अने तेओनां फलो एओना मध्ये कालनो अन्तराय बहु पडे छे. एथी शुभाशुभकर्मजनित धर्माधर्मरूप कारणथी सुख-दुःखरूप कार्य—फल—थाय छे, ए नियमनो अनुबन्ध सामान्य मनुष्योए समजातो नथी. किन्तु यथाविधि शास्त्राभ्यासी महात्माओए ए नियम यथावत् गण्यो छे. एथी सुखना लाभसारु प्रयतमान जनोए पुण्य कर्मोमां प्रवृत्तिअर्थे प्रयत्न अने पापकर्मोमां निवृत्तिअर्थे प्रयत्न कर्तव्य छे. कारण के सुखदुःखना हेतु, प्रत्येक मनुष्यनां पोतपोतानां जे शुभाशुभ कर्मो छे, ए ज छे. अध्यात्मरामायणमां उपदिश्यु छे केः—

"[1]सुखस्य दुःखस्य न कोपि दाता
परोददातीति कुबुद्धिरेषा ।
अहं करोमीति वृथाऽभिमानः
स्वकर्मसूत्रग्रथितो हि लोकः ॥"

अयोध्याकाण्ड. सर्ग ६—६.

ए शुभाशुभ कर्मथी बे अंकुर थाय छेः—(१) वासना[2] अने

---

१ सुख दुःखनो कोई पण दाता नथी; पर (अन्य वा ईश्वर) दे छे एवुं कहेवुं ए कुबुद्धि छे; 'हुं करूं छुं' ए पण खोटुं अभिमान छे. केम के स्वकर्मनां त्रवते गुंथायलो लोक छे. अर्थात् सूत्रयुक्ता पुत्तलीने सूत्रधार नचावेछे. ा कर्मरूप सूत्रवते युक्त लोकने तेना पोताना स्वकर्मोना चालनेकरी ईश्वर ाधस्थितिमां मूके छे—स्वकर्मानुसार सुखदुःख छे. २ पूर्वपूर्व अभ्यासेकरी ामां वसता—चित्तगत—संस्कार.

कर्मना अंकुरद्वय.

(२) अदृष्ट. शुभक्रियाजन्य कर्मथी शुभवासना, अने धर्मरूप अदृष्ट, ए बे अंकुर थाय छे. अने अशुभक्रियाजन्य कर्मथी अशुभ वासना, अने अधर्मरूप अदृष्ट, ए बे अंकुर थाय छे. शुभवासनारूप अंकुरथी पछी शुभकर्ममां प्रवृत्ति थाय छे; अने धर्मरूप अदृष्टअंकुरथी पछी सुखनो भोग[1] थाय छे. अने ए ज प्रकारे अशुभवासनारूप अंकुरथी पछी अशुभकर्ममां प्रवृत्ति थाय छे; अने अधर्मरूप अदृष्टअंकुरथी पछी दुःखनो भोग थाय छे.

ए वासनारूप तथा अदृष्टरूप अंकुरद्वयमांथी, वासनारूप अंकुरनो तो उपाये करी नाश थइ शके छे; अने अदृष्टरूप अंकुरनो तो फलनी उत्पत्ति विना कोइ प्रकारे पण नाश थइ शकतो छे नहि. अशुभकर्मथी उत्पन्न थया जे अशुभवासनारूप अंकुरो तेओनो सत्संगादि उपायेकरी नाश थाय छे; अने शुभकर्मथी उत्पन्न थया जे शुभवासनारूप अंकुरो तेओनो कुसंगादिथी नाश थाय छे. ए रीतिए प्रवृत्तिना हेतु जे वासनारूप अंकुरो तेओनो पुरुषप्रयत्नेकरी नाश थाय छे. अने भोगना हेतु जे अदृष्टरूप अंकुरो तेओनो भोगेकरी नाश थाय छे. पुरुषप्रयत्न तथा अदृष्टनी एवी व्यवस्थाथी उभयनी सफलता प्रतिपादिता थाय छे.

कर्मानुरूपभोगसंबंधमां एक सबला शंका अनुपदे सांभळवामां आवे छे केः—आ असार संसारमां वारंवार आम प्रतीत थाय छेः—अधर्मी दुराचारी मनुष्यो सुखी अने धर्मी सदाचारी मनुष्यो दुःखी; एथी सुखदुःखनुं धर्मअधर्म ए अव्यभिचारी[2] कारण छे ए आशंकनीय छे. एनुं समाधान कंइक आप्रमाणे कराय छे.

---

१ सुखदुःखनो साक्षात्कार. २ अबाधित. कार्यकारणभावभंगरहित नित्यसंबंधवालुं.

लिंगदेहमां जन्मजन्मान्तरना पूर्वसंस्काररूपे वसता शुभअशुभ कर्मना जे वासनारूप तथा अदृष्टरूप असंख्य अंकुरो छे, तेओमांथी शुभअशुभवासनारूप अंकुर अनुसार शुभाशुभ बुद्धि थाय छे. शुभबुद्धिअनुसार धर्माचरण किंवा सदाचार, थाय छे. अथवा अशुभबुद्धि अनुसार अधर्माचरण किंवा दुराचार, थाय छे. ते शुभाशुभ **वासनारूप** अंकुरमां अमुक उपाये करी भेद करी शकाय छे ए पूर्वे जाण्युं छे. अर्थात् वासनारूप अंकुरमां अन्यरूपनी प्राप्तिरूप **विकार**, अने मलनी निवृत्ति तथा गुणनी प्राप्तिरूप **संस्कार**, करी शकाय छे. परंतु **अदृष्टरूप** अंकुरनो तो भोगे करी ज क्षय थाय छे.

वासनारूप अंकुरमां भेद थइ शके छे; अदृष्टरूप अंकुरनो भोगथी ज क्षय थाय छे.

अवे जो, जे कर्मना फलदाननो काल आवे त्यारे ते ज कर्मना अदृष्टरूप तथा वासनारूप अंकुर पण ते अने ते ज होय तो; शुभकर्मना अदृष्टरूप अंकुरनुं फल सुख अने शुभवासनारूप अंकुरनो परिणाम धर्माचरण, अथवा अशुभकर्मना अदृष्टरूप अंकुरनुं फल दुःख, अने अशुभवासनारूप अंकुरनो परिणाम अधर्माचरण, ए, एक ज व्यक्तिमां एक ज काले देखवामां आवे. परंतु एवो नियम छे नहि. वासनामां उपायेकरी विकार अने संस्कार थाय छे, अने एथी भेद पडे छे. तेथी एक ज कर्मना अदृष्टनां फल सुखदुःख, अने वासनाना परिणाम शुभाशुभबुद्धिजन्य धर्म-अधर्म-आचरण, एओमां अन्तर पडी जाय छे. अधर्मरूप अदृष्टना फलदाननो काल आव्यो होय त्यारे दुःखनो भोग थाय छे, अने ते काले शुभवासना थइ होय तो, ते शुभवासना शुभबुद्धिद्वारा ते भोक्ताने धर्माचरणमां प्रेरे छे. ते प्रसंगे यद्यपि भोक्ताने

अधर्मरूप अदृष्टनुं फल—दुःखनो भोग—तो थाय छे, तथापि ते दुःखनुं बल, शुभवासनाना प्रतापथी, बहु न्यून थाय छे. अने एथी विपरीता घटनामां तदनुसार थाय छे. एक ज प्रकारनां अदृष्टनां फल जे सुखदुःख, ते अनेक व्यक्तिओमां न्यूनाधिक बलथी विचित्र परिणामने पामे छे, तेनुं पण पूर्वोक्त ज कारण प्रतीत थाय छे.

क्रियाना प्रकारः- अदृष्टफला—दृष्टफला.

वली कर्मसंबंधमां एक अन्य विचार पण छे. क्रियाजन्य कर्म होय छे. ते कर्ममां स्वकारणीभूता क्रियाना गुण अनुगत होय छे. ते क्रिया द्विविधा छेः—अदृष्टफला[1] तथा दृष्टफला.

अदृष्टफला क्रिया.

अदृष्टफला क्रिया फल दीधाविना शान्ता थाय छे, अने तेनुं फल कालान्तरे मळे छे. जेम कृषिलक्षणा क्रिया थइने नाश पामे छे. पछी बीजना अने क्षेत्रना संस्कार, तथा तेओनी रक्षा प्रओना ज्ञानवान् जे कर्ता तेनी अपेक्षा राखी ते कृषिक्रिया कालान्तरे कृषिकारने (धान्यादि) फल आपे छे; अथवा सेवालक्षणा क्रिया थइने नाश पामे छे. पछी कोइ पृथक् सेव्यनी (राजादिनी) सेवाना संस्कारवती बुद्धिनी अपेक्षा राखी, ते सेवाक्रिया कालान्तरे सेवकने (धनमानादि) फल आपे छे; तेम अदृष्टफला सर्वा क्रिया, तात्कालिक फल दीधा विना, शान्ता थाय छे, अने ते क्रियानां अनुरूप फल कालान्तरे मळे छे. सेवालक्षणक्रियासमा ए अदृष्टफला क्रियासंबंधमां कोइ पृथक् फलदातानी अपेक्षा छे. कारण कालान्तरे थनार फल कोइ एक सेव्यने अधीन छे. ए सर्व अदृष्टफल क्रियाना फलदाता सेव्य,—नित्य कर्तृकर्मफल-विभागज्ञ, देः

१ जेनुं फल देखायुं नथी एवुं, कालान्तरे फल आपनार.

कालनिमित्तविपाक-विभागज्ञ, सर्वना आत्मभूत, सर्व क्रियाफल-प्रत्यक्षसाक्षी,-सर्वज्ञ ईश्वर छे.

क्रिया किंवा कर्मनुं जे फल प्रत्यक्ष अथवा अनुमानथी प्रतीत होय नहि, किन्तु शास्त्रथी जणाय, ते 'अदृष्ट'फल कहेवाय छे. अदृष्टफलनी उत्पत्तिमां ते कर्मने जेटला सहाय[1] शास्त्रे बोधन कर्या होय, ते सहाय सहित ते कर्म, फलनो हेतु थाय छे; केवल कर्म नहि. अदृष्टफलना हेतु जे कर्म, ते श्रद्धादिसहित शास्त्रे बोधन कर्यां छे तो तेवां कर्ममां ते श्रद्धा-नियम-भक्तिनी अपेक्षा छे. अदृष्टफलना हेतु कर्मो जो श्रद्धादि-रहित होय तो यथेच्छ अदृष्टफल थाय नहि ए यथासंभव छे. अर्थात् जेम कृषिकर्ममां बीज, पृथिवी, जल, उष्णता, प्रयत्नादि सहायनी अपेक्षा छे, तो ते सर्व होय छे तो ज फल थाय छे, तेओनी न्यूनता होय तो यथेच्छ फल थतुं नथी; तेम व्यावहारिक अने शास्त्रीय सर्व अदृष्टफलमां छे. सांगोपांग नहि किन्तु व्यंगोपाङ्ग कर्म करे छे अने पछी तेना फलनी सिद्धि थती नथी त्यारे स्वप्रमादना—स्वकृतन्यूनताना—दोषने, न जोतां अन्यत्र शास्त्रादि उपर दोषारोपण सामान्य मनुष्यो करे छे. परंतु ते यथार्थ नथी.

"[2]मंत्रे तीर्थे द्विजे देवे दैवज्ञे भेषजे गुरौ ।
यादृशी भावना यत्र सिद्धिर्भवति तादृशी ॥"

ए मानसिक सृष्टिसंबंधमां केटलेक अंशे वास्तविक छे.

दृष्टफला क्रिया.

दृष्टफला क्रिया अनन्तरफला छे नाम,—फल दृढने शान्ता थाय छे. अर्थात् क्रिया अने क्रियानां फलमां अन्तर पडतुं छे नहि, किन्तु

---

१ सहचर, साथे होवा जोइए ते. २ 'मंत्रमां, तीर्थमां, द्विजमां, देवमां, ज्ञ(ज्योतिषी)मां, औषधमां, अने गुरुमां—जेवी भावना जेमां होय तेवी थाय छे.'

तत्काल फल थइ क्रिया समाप्ता थाय छे. तेमां पृथक् फलदातानी अपेक्षा नथी. जेम गमनक्रियानुं फल इच्छेला स्थाननी प्राप्ति; अथवा भोजन क्रियानुं फल क्षुधानी (निवृत्तिरूप) तृप्ति छे; ते प्राप्तिरूप अथवा तृप्तिरूप फलने आपीने गमनक्रिया अथवा भोजनक्रिया शान्ता थाय छे. तेम दृष्टफलक्रियारूप बहु विषयोमां छे.

क्रियाजन्य कर्मना अदृष्टरूप अंकुरमांथी थतां फलोमांथी केटलांक शीघ्रकाले भोग देवाने उन्मुख थाय छे. अने केटलांक कालान्तरे भोग देवाने पण उन्मुख थाय छे. एथी ए कर्मना ज अदृष्टरूप तथा वासनारूप अंकुरना फलोदयना कालमां अन्तर पडी जाय छे. ए कारणथी अधर्मी मनुष्यो सुखी अथवा धर्मी मनुष्यो दुःखी, एवुं विपरीत प्रतीत थाय त्यारे तेनो हेतु—अदृष्टना फलोदयनुं अने वासनाना संस्कारनुं अन्तर थाय छे ए—मानवो यथावत् छे.

ए उपरथी एक सिद्धान्त लक्षमां राखवानो छे के:— अदृष्टनो तो भोगथी ज क्षय थवानो छे. तेथी ए अंश उपर उपेक्षा राखी, वासनारूप अंशने ज शुद्धसंस्कारी करवा मनुष्ये प्रयत्न करवो ए ज उचित अने सफल छे. अन्तःकरणनी वासनाओ शुभा थतां सुखदुःखना भोगकाले पण पुनः ते शुभवासनाओ क्रियमाण शुभकर्मो प्रति ज प्रेरे छे. अने तेथी अन्ते शुभकर्मोमां ज प्रवृत्ति रही तेवा मनुष्यो निःश्रेयसना अधिकारी थाय छे.

संचित-प्रारब्ध आगामि-कर्म.

पुनः प्रकारान्तरे कर्म त्रिविध छे. जेम एक ज काल, अवस्थाभेदे, भूत-वर्तमान-भविष्यत्-एवी संज्ञाने प्राप्त थाय छे, तेम एक ज कर्म अवस्थाभेदे करी, सञ्चित (१), प्रारब्ध (२) तथा आगामि (३), ए त्रिविध संज्ञाने प्राप्त थाय छे.

अनेक अतीत जन्मविषे संचय थयेलां फलारंभरहित कर्मो ते '**सञ्चित**' कहेवाय छे. ए 'सञ्चितकर्म' अंतःकरण-उपहितसाक्षिनिष्ठ जे अज्ञान, ते अज्ञाननी जे 'आवरणशक्ति' तेमां स्थित होय छे. अने ते कर्मनो नाश ज्ञानरूप अग्निए थाय छे.

अनेक सञ्चित कर्मोमध्ये जे परिपक्व थयेल अने जे ईश्वरेच्छाथी आ वर्तमान शरीरनां आरंभक कर्मो ते '**प्रारब्ध**' कहेवाय छे. ए 'प्रारब्धकर्म' अंतःकरणउपहितसाक्षिनिष्ठ जे अज्ञान ते अज्ञाननी जे 'विक्षेपशक्ति' तेमां स्थित होय छे. अने स्वजनित सुखदुःखना भोगरूप फलने आपे छे. अने ते कर्मनो नाश प्रारब्धभोग समाप्त थये ज थाय छे.

प्रारब्धकर्मजनित भोगोने भोगवते सते, जे आ वर्तमान शरीरविषे क्रियमाण अने भविष्यत् कालमां फलप्रद कर्मो ते '**आगामि**' कहेवाय छे. ए 'आगामिकर्म,'—अन्तःकरणनो कर्तृरूप-वृत्तिमान् अंश जे अहंकृति, ते अहंकृतिनुं साक्षीसह जे भ्रमज-तादात्म्य,—ते भ्रमजतादात्म्यमां स्थित होय छे. ए तादात्म्यने ज चित्-जड-ग्रंथि, किंवा, हृदय-ग्रंथि कहे छे. ए भविष्यत्कालमां फलप्रद 'आगामिकर्मोनो' नाश,—श्रुति-आचार्यना अनुग्रहबलेकरी 'अहंब्रह्मास्मि' (हुं ब्रह्म छुं) एवा—ब्रह्मात्मैक्यसाक्षात्कारथी थाय छे. अर्थात् एवा साक्षात्कारवान् विद्वान्‌ने ए **आगामि** किंवा **क्रियमाण** कर्मनो लेप थतो नथी.

सामान्यतः कर्मफलनो भोग थये ज क्षय थाय छे, ए सिद्धान्त छे. तेओमां पण प्रवृत्तफल जे प्रारब्धकर्म तेओ तो विशेषतः उपभोगे करी

...ना फलनो भो-
...थी ज क्षय.

...यमाण छे.

"नाभुक्तं क्षीयते कर्म कल्पकोटिशतैरपि ।
अवश्यमेव भोक्तव्यं कृतं कर्म शुभाशुभम् ॥"

'करेलुं शुभअशुभकर्म अवश्य ज भोक्तव्य छे. कल्पनां कोटिशतकोएकरी पण भोगाया विनाना कर्मनो क्षय थतो नथी.' एम छे तो स्वहितेच्छुके कर्म करतां बहु ज सावधान रहेवुं योग्य छे.

पूर्वोक्त सञ्चित, प्रारब्ध, अने आगामि, ए त्रिविध कर्मोमां मध्यनुं प्रारब्धकर्म तेनो उपभोगे करी ज क्षय थाय छे, अने ते बलवत्तर गणाय छे.

"प्रारब्धं बलवत्तरं खलु विदां भोगेन तस्य क्षयः।"

वि. चू. ४५४ ।

प्रवृत्तिलक्षण धर्मनां अनुसारी सर्व जनो कार्यनी सिद्धि-अर्थ प्रयतमान होय छे. ते सिद्धिने कोइक प्रारब्धने अधीना गणे छे. कोइक पुरुषप्रयत्नने अधीना गणे छे; कोइक उभयने अधीना गणे छे. ए पक्षत्रयना विषयमां शंकासमाधानना बहु विचारो छे. तेओमांथी स्वल्पनो सार कइंक आ प्रकारे छे.

स्वकार्यना जननसारु आरंभायला प्रारब्ध कर्मना,—दैव, भाग्य, विधि आदि शब्दो—पर्याय गणाय छे.

पुरुषप्रयत्न अने प्रारब्ध.

ए पक्षत्रयमांथी पुरुषकार तथा प्रारब्ध ए उभयथी कार्यनी सिद्धिना वादीओनो पक्ष युक्तियुक्त अने बहुमत, विचारकोए गणाय छे. केवल-प्रारब्धवादीने क्षुधादिकनी तृप्तिसारु अंग-चेष्टामां अने रोगादिनी निवृत्तिसारु औषध उपचारमां प्रयत्न-वान् देखीने, अने केवलपुरुषप्रयत्नवादीने अभीप्सितार्थम अतीव प्रयत्न करे सते निष्फल थएला जोइने, प्रारब्ध-पुरुष प्रयत्नना समुच्चयवादी विचारे छे के, कार्यसिद्धिमां उभय अपेक्षा छे. तेमां केटलांक कार्यनी सिद्धिमां पुरुषप्रयत्न

छे अने प्रारब्ध गौण छे; अने केटलांक कार्यनी सिद्धिमां प्रारब्ध मुख्य छे अने पुरुषप्रयत्न गौण छे. परंतु सर्व कार्योनी सिद्धिमां न्यूनाधिक उभयनी अपेक्षा छे. शास्त्रकारो अन्धपंगुन्याय वर्णे छे ते, ए संबन्धमां, यथाघटित छे. एक व्यक्तिना शरीरमां पण चक्षु अने पाद उभयनो उपयोग, रूपने जोवामां अने गमन करवामां, थाय छे. कहिं जइ कइं रूप जोवानुं होय तेमां चक्षुनो मुख्य उपयोग होय छे; अने पादनो गौण उपयोग होय छे. कइं गमन करवानुं होय तेमां पादनो मुख्य अने चक्षुनो गौण उपयोग होय छे. आ अविद्या-मूलक संसारनो स्वभाव अने व्यवस्था ज एवां जणाय छे के, अनेक साधनोए करी एक कार्य सिद्ध थाय. तेमां पण उत्पत्तिसंबंधमां पुरुषप्रयत्न मुख्य जणाय छे, अने भोग थइ क्षय थवामां प्रारब्ध मुख्य भासे छे.

पुनः फलसिद्धि संबंधमां प्रारब्ध, जडपदार्थ–विषय–तुल्य छे, अने पुरुषप्रयत्न, चैतन्य–इन्द्रिय–तुल्य छे. ए उभयनो संयोग थयाथी भोग–फल–सिद्ध थाय छे. भोग्यपदार्थ तो उत्पन्न थएला ज होय छे. ते भोग्यपदार्थनो, अने भोक्तानो संयोग, भोगमां अपेक्षित छे; ते संयोग थवामां पुरुषप्रयत्न आवश्यक छे. पुरुषप्रयत्न न थाय तो जड भोग्य ज्यां होय त्यां ज रहे अने तेनो भोग अने क्षय थाय नहि.

सृष्टि किंवा जगत् ईशनुं कार्य अने जीवनुं भोग्य छे. ईश्वरनिर्मितसृष्टिना पदार्थो एक ज रूपे रहे छे. ते भोग्यपदार्थोमां भोक्ता जीवनी बुद्धिवृत्ति नाना होवाथी तेओना भोगमां बहुधा भेद थाय छे.

ईश्वरसृष्ट एक मूल्यवान् मणि छे. ते त्रण जीवोए दीठो. तेमां बे लोभी हता अने त्रिजो विरक्त हतो. तेमांथी जे जी-

वने ते मणि मळ्यो ते जीव हर्ष्यो, जे जीवने ते मणि न मळ्यो ते कोप्यो, अने तृतीय जीव जे विरक्त हतो ते न हर्ष्यो न कोप्यो. एम ईश्वरसृष्ट एक ज मणिमां जीवोनी नाना रागद्वेषादिवृत्तिअनुसार प्रिय अप्रिय उपेक्ष्य एवा त्रण भेद थया. ए त्रणे भेद जीवोए रचित छे. सर्व जीवोने रागद्वेषादिथी सुखदुःखादि आपी बंधन करनार स्वरचित सृष्टि ज छे. इत्यादि पंचदशीना द्वैतविवेकमां सिद्ध कर्युं छे.

एम ईश्वरकृतसृष्टि अने जीवकृतसृष्टि छे. तेमां ईश्वरकृता सृष्टिनुं निवारण अशक्य छे. तेथी ते संबंधमां प्रारब्धने प्रधान गणवुं उचित छे. जीवकृता सृष्टिमां यथेच्छ व्यवस्था करी शकाय छे. ए सृष्टि जीवना अन्तःकरणनी वृत्तिने अधीना छे. वस्तुतः जीवकृता सृष्टि ते जीवना ज संकल्पविकल्पनुं परिणाम छे. ते जीव पुरुषप्रयत्न करी यथार्थदर्शी थाय तो ते मनोजय अने वासनाक्षय करवा समर्थ थाय छे, जे केवल पुरुषप्रयत्नाधीन छे; अने तेम थये जीवकृतसृष्टिना दुःखद परिणाम दूर थाय छे. अर्थात् जीवकृतसृष्टिमां पुरुषकार प्रधान छे ए स्पष्ट छे. एथी जीवकृतसृष्टिसंबंधमां पुरुषप्रयत्नने प्रधान गणवो उचित छे. फलना उपभोग समये उभयसृष्टिमां प्रारब्ध प्रवेशे छे; अने 'प्रारब्धनो भोगेकरी ज क्षय थाय छे.'—ए कथन ए प्रकारे सफल थाय छे. प्रारब्ध उभयसृष्टिमां प्रवेशी सुख-दुःखना साक्षात्काररूप **भोग** आपीने क्षयने पामे छे.

ए उभयसृष्टिनी ए प्रकारे व्यवस्था करे एक अन्य लाभ पण थाय छे. ईश्वरकृतसृष्टिमांथी फलनी उत्पत्तिमां प्रारब्ध प्रधान गणाथी, तज्जन्य अनिवार्य प्रसंगोमां कराता व्यर्थ प्रयासो अने कालक्षयादि वंचे छे; तेओने संरक्षी पुरुषप्रय-

त्नमां उपयोगी करी शकाय छे, जेथी पुरुषप्रयत्न विशेष प्रबल थइ शकेछे.

प्रारब्ध ए सञ्चित कर्मोना परिपाक भागमांनो फलोन्मुख थएलो भाग होय छे ते छे. ते सञ्चित ए पुरुषप्रयत्ननुं ज कार्य छे. अर्थात् पुरुषप्रयत्न कारणस्थानीय छे, अने प्रारब्ध कार्यस्थानीय छे, कारण छे ते कार्यथी उत्कृष्टपदस्थ छे ए सर्वमान्य छे.

मुहूर्तचिन्तामणिकार कथे छे केः—पूर्वकर्मार्जित सत्-असत् कर्मनो विपाक ए 'दैव'. ते प्राचीन सत्-असत्-कर्मरूप दैवनुं अवश्यंभावित्व छे, तथापि पुरुषप्रयत्ननो योग सते ज कार्यसिद्धि थाय छे. अत्र दैव नाम प्रारब्धनुं ज छे.

याज्ञवल्क्य स्मरे छे केः—

"दैवे पुरुषकारेऽपि कर्मसिद्धिर्व्यवस्थिता ।
तत्र दैवमभिव्यक्तं पौरुषं पौर्वदैहिकं ॥
यथा ह्येकेन चक्रेण रथस्य न गतिर्भवेत् ।
तद्वत्पुरुषकारेण विना दैवं न सिद्ध्यति ॥"

'कर्मसिद्धि' नाम इष्ट-अनिष्टलक्षणफलप्राप्ति, 'दैव' नाम प्रारब्धविषे अने 'पुरुषकार' नाम पुरुषप्रयत्नविषे पण 'व्यवस्थिता' नाम रहेली छे. तेमां पूर्वदेहमां अर्जित 'पौरुष' नाम पुरुषप्रयत्न ज 'दैव' एम कहेवाय छे. ते दैव पुरुषप्रयत्नना अनन्तर फलोदयरूपे 'अभिव्यक्त' नाम प्रकट थाय छे. जेम एक चक्रेकरी रथनी गति नथी थती, तेम पुरुषकारविना दैव फलतुं नथी.

व्यास पण वदे छे केः—

"न विना मानुषं दैवाद्दैवं वा मानुषाद्विना ।
नैको निवर्तयत्यर्थमेका ारणेरिवानलः ॥"

'(फळनी सिद्धि) [illegible]ना नाम पुरुषप्रयत्नविना, दैवथी नाम प्रारब्धथी थती नथी; अने दैवविना मानुषथी थती नथी. जेम एक अरणि[1] अग्नि उत्पन्न करी शकती नथी' तेम एक ज दैव वा मानुष अर्थनी सिद्धि करी शकतुं नथी.

"कृषिवृष्टिसमायोगात् दृश्यन्ते फलसिद्धयः ।"

'कृषि (खेती)रूप पौरुष अने वृष्टिरूप दैव ए उभयनो सारो योग थये फलनी सिद्धिओ देखाय छे.'

प्राक्कर्म किंवा दैव ए बीजरूप छे; आधुनिक क्रियमाण कर्म किंवा पुरुषकार ए, पृथिवी, जल, उष्माना संस्काररूप छे. उभयना योगथी फलसिद्धि थाय छे. पुरुषकार-सदाचार पुनः अभीप्सितार्थना अनिष्टने शोषे छे; अने इष्टने पोषे छे.

एम पुरुषकार, दैवनो–प्रारब्धनो–जनक छे, तथा फलसिद्धिनो उत्पादक अने पोषक छे. ए तत्त्व गण्युं छे.

ए रीतिए पुरुषकार अने प्रारब्ध एओनो जनकजन्यभावसंबंध स्पष्ट प्रतीत थाय छे.

पुरुषार्थमां पुरुषप्रयत्न अने प्रारब्ध.

(नरनारी आदि देहधारी) सर्व पुरुषनी जेमां प्रीति छे एवा 'अर्थ' ते पुरुषार्थ. ते पुरुषार्थने चतुर्विधगणी 'पुरुषार्थचतुष्टय' कहे छे. ते पुरुषार्थचतुष्टयनां नाम–धर्म (१), अर्थ (२), काम (३), अने मोक्ष (४) छे. ए पुरुषार्थचतुष्टयमां पुरुषना सर्व कर्त्तव्यनो समावेश थाय छे. ए चतुर्विध पुरुषार्थ सिद्ध करवा यथामति सर्वनो प्रबल अभिलाष तथा प्रयत्न होय छे. ते पुरुषार्थनी सिद्धिसारू पुरुषकारनी अने प्रारब्धनी आ प्रकारे व्यवस्थिति कल्याणकारिणी तथा सुखप्रदा छे.

---

[1] अरणि नामे वृक्षना लाकडाना बे कटकाना घर्षणथी अग्निहोत्रादि सारु अग्नि प्रकट करता. ते अग्नि मात्र एक कटकाथी उत्पन्न थाय ज नहि तेम.

धर्म अने मोक्षमां पुरुषप्रयत्ननी प्रधानता.

आदि अन्तना 'धर्म' तथा 'मोक्ष' ए द्वयनी सिद्धि पुरुषकारनी अधीना छे; अने मध्यना 'अर्थ' तथा 'काम' ए बेनी सिद्धि प्रारब्धनी अधीना छे. कारण धर्मज्ञ विद्वान् आर्यो जे क्रियमाणने प्रशंसे छे ते धर्म[1], तथा प्राप्य मोक्ष, ए पुरुपतंत्र छे. मनुष्ये विद्यासंपन्न, सद्विचारी, सत्यवादी, सदाचारी, परोपकारी, स्वधर्मनिष्ठ, सद्गुणी इत्यादि थवुं एमां ते स्वतंत्र छे. तेमां कई अन्यनी अपेक्षा नथी. मनुष्यनी बाह्यस्थिति रंकनी हो किंवा राजानी हो, तथापि जो तेनो संकल्प दृढ होय तो, ते सद्गुणीमां श्रेष्ठ थई शके छे. गुणमां श्रेष्ठ पदे पहोंचवामां कोइने किञ्चित् पण परतंत्रता नथी; श्रेष्ठगुणी थवामां परनो प्रतिबंध सफल थइ शकतो नथी. प्राप्य जे परमपुरुषार्थ मोक्ष तेमां पण समानरीतिए मनुष्य स्वतंत्र छे. ए उभय पुरुषतंत्रा पुरुषार्थनी सिद्धिमां पुरुषकार किंवा पुरुषप्रयत्न ज प्रापक समर्थ साधन छे.

अर्थ अने काममां प्रारब्धनी प्रधानता.

मध्यना 'अर्थ' अने 'काम' ए परतंत्र छे. जे क्षेत्र धन धान्य पशु आदि पदार्थो भोगनां साधन छे ते 'अर्थ' कहेवाय छे; अने ते अर्थोएकरी थाय छे जे,—इन्द्रियोए वाञ्छित, सकाम पुण्यादिना फलरूप, विषयनो यथेच्छ भोग,—ते 'काम' कहेवाय छे.

ए अर्थ अने काम उभयमां परनी-अन्यनी-आवश्यकता

---

१ "यमार्याः क्रियमाणं हि शंसन्त्यागमवेदिनः।
स धर्मो, यं विगर्हन्ति तमधर्मं प्रचक्षते ॥"
विश्वामित्रः।

छे, तेथी ते परतंत्र गणाय छे. तेनी प्राप्ति ईश्वरसृष्टिमांथी ज थाय छे. तेमां प्रारब्ध ज प्रधान होवाथी पुरुषप्रयत्न करे सते पण अर्थनी अने कामनी सिद्धि थती नथी; ए सर्वने वारंवार प्रत्यक्ष छे. इत्यादि कारणोथी परतंत्र "अर्थ-काम" प्रारब्धाधीन गणाय छे.

व्यवहारमां अज्ञानताथी तेओनी विपरीतता.

यथार्थ दृष्टिए ए प्रमाणे व्यवस्था छे. तथापि लोकदृष्टि तेथी विपरीता ज जणाय छे. प्रायशः सर्व मनुष्यो परतंत्र 'अर्थ-काम'नी सिद्धि सारू पुरुषप्रयत्न मरणपर्यन्त कर्यां ज जाय छे; अने स्वतंत्र 'धर्म-मोक्ष'नी सिद्धिअर्थ पुरुषकारमां प्रमाद राखी, तेने प्रारब्धाधीन मानी, ते सारू कइं पुरुषप्रयत्न करता ज नथी. एम कह्युं होय तो चाले.

एवा विपरीत ग्रहणे करी स्वतंत्र परतंत्र उभय वर्गना फलर्थी अविचारी मनुष्यो भ्रष्ट थइ दुर्भागी रहे छे, अने जन्मथी मरणपर्यन्त दुःखी थइ आ दुर्वार निःसार संसारनी घटमालामां भ्रमण कर्या जाय छे.

ए संबंधमां लक्षमां राखवा योग्य एका आख्यायिका छे.

ए संबंधमां आख्यायिका.

कोइ एक ग्रामना लोक, उदरना अने नेत्रना व्याधिथी बहु पीडाता हता. तेमां एक श्रद्धालु जन सन्तनी सेवामां परायण थइ वसतो हतो. ते ग्राम महायात्राना धौर्य मार्ग उपर हतुं, तेथी त्यां अनेक अतिथि साधुसंतनां गमनागमन थतां. एक परिव्राजक महात्माए पेला श्रद्धालुने पूछयुं केः—आ ग्रामना सर्व लोक दुःखी केम देखाय छे? तेणे उत्तर आप्युं केः—महाराज! अत्रस्थ लोक उदरना तथा नेत्रना रोगथी पीडित होवाने लीधे दुःखित छे. ते कृपालु महात्मा, उभय व्याधिनां औषधो, समान देखाती काचकूपीमां, आपीने सिधाव्या. ते औष-

थथी ए ग्रामना लोकोनो रोग निवृत्त थवा माड्यो, अने पेला श्रद्धालुने वैद्यराजनी पदवी मली अने धननी सारी प्राप्ति थवा माडी. पछी ते वैद्यराज परण्या अने तेनो विस्तार थवा लाग्यो; तेम तेम स्त्री सन्ताननी सेवामां परायण थया अने सन्तसेवा विसर्या.

एकवार एम थयुं के ते वैद्यराजना कोइ बालके पेला औषधनी कूपीओ विपरीत[1] मूकी दीधी. वैद्यराजे ते जाण्युं नहि तेथी उदरना औषधने नेत्रना औषधरूपे अने नेत्रना औषधने उदरना औषधरूपे वापरवा अने आपवा माड्यां. ए विपरीत प्रकारे अपायला औषधोनो जेणे जेणे उपयोग कर्यो तेने तेने अधिक पीडा थइ. ते उभय औषधोना उपरथी सर्वनो विश्वास उठी गयो, अने पेला वैद्यराजनी जीविका पण परवारी. ते वैद्ये तर्क कर्यो के,—महात्माए ते कूपीओना मुखभागमां रोगहर औषध मूकेलुं, अने नीचेना भागमां रोगकर औषध मूकी कपट कर्युं छे. परिणाम ए थयुं के ते वैद्यनो व्यापार गयो अने ते ग्रामवासी पण रोगग्रस्त अने दुःखी थवा लाग्या.

ए आख्यायिकामां, जेम यथार्थ ग्रहणथी फलसिद्धि थइ सर्व स्वस्थ अने सुखी थयां हतां, अने अज्ञानजनित विपरीत ग्रहण थतां सर्व रोगग्रस्त अने दुःखी थयां, तेम पुरुषप्रयत्न अने प्रारब्ध संबंधमां आ जगत्मां थतुं जणाय छे. पुरुषप्रयत्नरूप औषध ए, धर्म-मोक्ष संबंधमां सिद्धिसाधक छे; अने तेओनुं विपरीतग्रहण तथा प्रारब्धरूप औषध ए, अर्थकाममां उपयोगि साधन छे. तेओनो विपरीत प्रयोग थाय छे, तेथी आ जगत्, असार संसारना आधि व्याधि अने उपाधिना सन्तापमां मग्न छे. पुण्यना परिपाकथी सत्-

१. अवळ सवळ, फेरफार.

समागमनी सीमामां अवाइ विपरीतग्रहथी मुक्त अने यथार्थग्रहणना संबन्धी थवाय तो ज सन्ताप शान्त थइ स्वस्थता अने सुख संप्राप्त थइ तराय एम छे.

सामान्यरीतिए एम प्रारब्ध कर्म अने पुरुषकारनी व्यवस्था छे, तथापि शिष्टोनो आवो अभिप्राय स्पष्ट जणाय छे केः—कर्मनो जनक पुरुषप्रयत्न किंवा पुरुषकार छे, एथी पुरुषप्रयत्न बलिष्ठ अने सर्वार्थसाधक छे. तेमां पण मन—जे पशुवत् पुरुषोने संसारबंधननो हेतु छे—ते मननो जय करवामां अने वासनानो क्षय करवामां तो पुरुषकार ज प्रधान छे. अने ए ज कारणथी तत्त्वज्ञान मनोनाश वासनाक्षयरूप जीवन्मुक्तिना अनुपम सुखप्रसंगमां पुरुषप्रयत्न प्रधानपदे निरुपाय छे. श्रीवसिष्ठ मुनि श्रीरामचंद्र प्रति योगवासिष्ठमां वदे छे केः—

पुरुषप्रयत्ननी प्रबलता.

"सर्वमेवेह हि सदा संसारे रघुनन्दन ।
सम्यक्प्रयत्नात् सर्वेण पौरुषात्समवाप्यते" ॥

'अहो रघुनन्दन! आ संसारमां सारा प्रयत्नथी अने पौरुषथी सर्वे (जनोए)करी सर्व ज (पदार्थ) सदा सारी रीतिए पमाय छे.

ज्यां यथेच्छ प्राप्ति थती नथी त्यां पुरुषप्रयत्नरूप यथायोग्य साधन संपत्तिनी प्रायशः विकलता के अभाव होय छे. पुरुषप्रयत्न सर्व साधक छे, ए सुनिश्चित छे. कारण के पुरुषार्थचतुष्टयमां जे आदि अन्तना परम पुरुषार्थ 'धर्म-मोक्ष' एतो पुरुषकारअधीन ज छे.

एम मध्ये प्रारब्ध अने पुरुषकारसंबंधी प्रासङ्गिक विचार जाणीने तेओ उभयमां अनुस्यूत जे कर्मनुं अनुष्ठान—जे प्रवृत्ति-

लक्षण धर्मनुं अंग होवाथी प्रकृत विषय छे-ते गहनगति-मत् कर्म विषये पुनः कइक आ प्रमाणे विचार छे.

प्रवृत्तिलक्षण धर्म ए आ जगत्नी स्थितिनुं कारण छे. अने प्राणीओना साक्षात् अभ्युदयनो हेतु छे, तथा परंपराए ज्ञानोत्पत्तिनो हेतु छे, ए शास्त्रसिद्ध अने युक्तिसिद्ध छे. एम होवाथी प्राणीमात्र सदा कर्ममां प्रवृत्त होय छे.

कर्म प्रकृतिसिद्ध ज छे.

"कार्यते ह्यवशः कर्म सर्वः प्रकृतिजैर्गुणैः॥" गी. ३-५

ए यथार्थ छे. अवश सर्व प्राणी प्रकृतिना सत्वरजस्तमो-गुणोएकरी कर्म करे छे. एक क्षण कोइ प्राणी कदाचित् अकर्मकृत् थइ रही शकतो नथी.

"नहि देहभृता शक्यं त्यक्तुं कर्माण्यशेषतः॥"

भ. गी. १८-११.

'देहभृत् नाम देहात्माभिमानवान् तेणे करी अशेषथी कर्मोने त्यजवानुं शक्य नथी.' केटलाएक विमूढो मनवते विषयोने स्मरता सते हस्तादि कर्मेन्द्रियोने संयमीने-खेंची राखीने-बेसे छे तेओ पापाचार छे. तेओना करतां जेओ ज्ञानेन्द्रियोने नियमीने फलाभिसन्धिवर्जित थइ कर्मेन्द्रियो-वते कर्मनुं अनुष्ठान करे छे, तेओ विशेष (अधिक सारा) छे. कारण के फलथी, अकर्म करतां कर्म अधिकतर छे. अकर्मथी तो शरीरयात्रा पण सिद्धा थती नथी. जगत्रूप चक्रनी प्रवृत्तिनो हेतु जे कर्म ते अधिकारीओए अवश्य कर्तव्य छे. आत्मज्ञाननिष्ठानी योग्यतानी प्राप्तिअर्थे पण अनात्मज्ञ अधि-कारीओए कर्मोनुं अनुष्ठान कर्तव्य छे. व्यास नारायण पण वदे छे केः-

"अयमेव क्रियायोगो ज्ञानयोगस्य साधकः ।
कर्मयोगं विना ज्ञानं कस्यचिन्नैव दृश्यते ॥"

'आ ज क्रियायोग ज्ञानयोगनो साधक छे. (कारण) कर्मयोग विना कोइने ज्ञान (थयुं होय एम) देखातुं ज नथी.'

कर्मनिष्ठा ज्ञाननिष्ठाप्राप्तिनो हेतु छे.

कर्मनिष्ठाने ज्ञाननिष्ठाप्राप्तिनुं हेतुत्व छे. आ जन्ममां वा जन्मान्तरमां अनुष्ठित कर्मोने उपात्तदुरितक्षयनुं हेतुत्व छे. ते हेतुत्वेकरी कर्मोने सत्त्वशुद्धिनुं कारणत्व छे. ते सत्त्वशुद्धिना कारणत्वेकरी ज्ञानोत्पत्तिद्वारा ज्ञाननिष्ठाना हेतु अनुष्ठित कर्मो थाय छे. एम कर्मनिष्ठारूप उपायेकरी ज्ञाननिष्ठा लब्धात्मिका छे. अर्थात् कर्मोनुं अनुष्ठान छे ए सम्यक्‌दर्शननो—ज्ञाननो—उपाय छे; एथी सत्वशुद्धि अर्थे अने ईश्वरार्थ कर्मी—योगी—कर्मो करे छे.

"ज्ञानमुत्पद्यते पुंसां क्षयात् पापस्य कर्मणः ।
यथाऽऽदर्शतले प्रख्ये पश्यन्त्यात्मानमात्मनि" ॥

'जेम निर्मल दर्पणना तळमां पुरुष पोताने देखे छे; तेम पापकर्मनो क्षय थये पुरुषने ज्ञान उत्पन्न थाय छे, अने ते ज्ञानथी आत्मामां (अन्तःकरणमां) आत्माने (परमात्मस्वरूपने) देखे छे.' अर्थात् कर्मनुं अनुष्ठान छे ते विद्योत्पत्तिनो अने ब्रह्म' साक्षात्काररूप ज्ञाननो हेतु छे.

कर्मोने करवा, न करवा, अन्यथा करवा पुरुष समर्थ छे एथी कर्मो पुरुषव्यापारतंत्र गणाय छे.

कर्मना बे भेद सकाम—निष्काम.

कर्मना सकाम अने निष्काम एवा बे भेद छे. श्रूयमाण स्मर्यमाण वा अनुभूत सुखना हेतु, आत्माने अनुकूल, इन्द्रिय गोचर, प्राप्त इष्ट विषय, तेमां जे तृष्णा-राग-ते काम कहेवाय छे. ते

'काम' सहित जे कर्म ते सकाम कर्म छे. शरीरनी प्रवृत्तिनो हेतु होवाथी ते सकाम-कर्मने 'प्रवृत्तकर्म' पण कहे छे; अने ते विशिष्टफलप्रद छे. इहे अमुत्र अर्थना भोगनी तृष्णारहित जे कर्म ते 'निष्काम' कर्म कहेवाय छे. ते निष्कामकर्म ब्रह्मज्ञानना अभ्यासपूर्वक होय तो संसारनी निवृत्तिनो हेतु होवाथी तेने 'निवृत्तकर्म' पण कहे छे; अने ते मुक्तिप्रद छे. ज्यांसुधी मनुष्यने भोगविषे आसक्ति होय अने आत्मज्ञाननी इच्छा उत्पन्न न थइ होय त्यांसुधी ते सकाम कर्म करे छे; अने ते सकाम कर्म संसारनो हेतु छे. सत्समागम, विचार, अनुभवादिएकरी बुद्धिनी वृद्धि थाय छे त्यारे पुरुषने ब्रह्मज्ञाननी जिज्ञासा थाय छे. तेवा जिज्ञासु निष्काम कर्मना अधिकारी छे. निष्कामकर्म अन्तःकरणनी शुद्धिद्वारा ज्ञाननो हेतु छे.

कर्मथी बंध.

एम एक दृष्टिए कर्म अनिवार्य अने आवश्यक प्रतीत थाय छे. परंतु अन्यदृष्टिए जोतां कर्म, बन्धनस्वभाव अने अनिष्टकारी पण गणाय छे. कारण आ दुःखमय निःसार संसारनी आपत्तिनो मुख्य हेतु कर्म छे. भोगमात्रनुं आयतन जे शरीर ते रूप विलक्षण बंदिशालामां जीवमात्र बंधाइ रहे छे. अने तेमां सुखवियोगनिमित्त मोह, तथा दुःखसंयोगादिनिमित्त शोक, एओना आघातथी प्रवर्तित चक्रमंडलमां पडी, ते जीवो एवा भ्रमित अने मूर्छित थई जाय छे के, अतीव दुःख अनुभवते सते पण तेओने ते शरीररूप बंदिशालामांथी मुक्त थवाना योग्य उपाय अने प्रयत्न क्वचित् ज सुझे छे. ए बंदिशालामां वसी भोगने भोगववा अर्थे कर्मो करे छे, अने ते क-

१ आ लोक परलोकना विषय.

रेलां कर्मोना अनुसार पुनः फल भोगवे छे. एम घटीयन्त्रवत् पुनः पुनः जीवमात्रनुं आवर्तन थयां ज जाय छे. मुहूर्त पण न सहेवाय एवुं नव दश मास गर्भवासनुं कष्ट सही जीव जन्मे छे. पछी ज्यांसुधी कर्मोपात्त आयुष् होय छे त्यांसुधी घटीयन्त्रवत् गमनागमन अर्थे, वा कुलालचक्रवत् तिर्यक्भ्रमण सारू कर्म करतो जीवे छे, अने क्षीणायुष् थये कर्मनिर्दिष्ट लोकमां जाय छे. एम जन्म–मरणरूप घोर दुस्तर संसार सागरमां, उत्तरण प्रति निराश थइ, भ्रम्यां करे छे.

"कर्मणा बध्यते जन्तुर्विद्यया च विमुच्यते ।
तस्मात् कर्म न कुर्वन्ति यतयः पारदर्शिनः" ॥

महाभारत–शान्तिपर्व–मोक्षधर्म अ. २४१–७.

शुकानुशासनविषये वदे छे केः–'कर्म करी जंतु बंधाय छे, अने विद्याए करी मूकाय छे. तेथी पारदर्शी यतिओ कर्म करता नथी परंतु विद्याए करी मुक्त थाय छे.'

रामगीतामां पण गाय छे केः–

"क्रिया शरीरोद्भवहेतुरादृता
प्रियाऽप्रियौ तौ भवतः सुरागिणः ।
धर्मेतरौ तत्र पुनः शरीरकं
पुनः क्रिया चक्रवदीर्यते भवः ॥ ८ ॥
अज्ञानमेवास्य हि मूलकारणं
तद्धानमेवात्र विधौ विधीयते ।
विद्यैव तन्नाशविधौ पटीयसी
न कर्म तज्जं सविरोधमीरितं ॥ ९ ॥

अध्यात्मरामायण. उत्तरकाण्ड. सर्ग ५.

आदृता[1] क्रिया, शरीरना उद्भवनो[2] हेतु छे, तेमां सुरागी-

---

१ आदरपूर्वक पूर्वजन्मार्जित कर्म. २ जन्मनो.

पीना धर्म अधर्म ते, प्रिय अप्रिय (सुख-दुःख-जनक) थाय छे; (ते जन्ममां करेलां कर्म करी) पुनः शरीर थाय छे, पुनः क्रिया थाय छे, एम चक्रवत् भव नाम संसार कहेवाय छे. (भ्रमता चक्रनो उपरनो भाग नीचे अने नीचेनो भाग उपर आवे जाय छे तेम, जन्म अने कर्म संबंधमां जन्य-जनकभाव छे.) एनुं मूल कारण अज्ञान ज छे. ए विधिमां नाम–संसारनिवृत्तिलक्षण कर्तव्य अर्थमां–अज्ञाननुं हान–नाश–ए ज (साधन) आज्ञापाय छे. ते अज्ञानना नाशमां विद्या ज पटीयसी[1] छे, अज्ञानथी जनित कर्म (अज्ञान नाश करवामां समर्थ) नथी, केम के सविरोधी ज 'नाशक' कह्युं छे. (कर्म अने अज्ञान विरोधी नथी परंतु विद्या-ज्ञान-ज अज्ञाननुं विरोधि छे. तेथी ज्ञानथी ज अज्ञाननो नाश थाय छे. कर्मथी नहि.)

कर्मनो अने तेना फलनो सदा अव्यभिचार[2] छे. कर्मना प्रकारानुसार तत्काल अथवा कालान्तरे कर्मनुं फल थया विना रहेतुं ज नथी. क्रियापूर्वक फलनो उदय छे. क्रिया-विना–कर्म विना–फल थतुं ज नथी.

एम कर्म प्रकृतिसिद्ध–स्वाभाविक–छे, आवश्यक छे, कर्तव्य छे, तेम लाभहानिप्रद–इष्टअनिष्टफलकारि–छे, इत्यादि अनेकविरुद्धकोटीमत् पण कर्म छे; तथापि कर्मनुं इष्ट फल थाय अने तेना अनिष्ट फलथी वंचाय, एवी कोइ विशिष्ट व्यवस्था होवी जोइए, अने छे. भक्तवत्सल श्रीभगवाने तेवी व्यवस्था श्रेयोर्थी सारु गीतामां गाई छे. तेनो सारभूत आशय कइंक आवो छे.

---

१ समर्था. २ अवियोग. नित्यसंबन्ध.

कर्म करतां कर्मना फलनी तृष्णा करवी नहि, किन्तु सिद्धिअसिद्धिमां समत्वबुद्धियुक्त थइ केवल ईश्वर-आराधनार्थे कर्मो करवां. कारण के, कर्मोनुं फल जन्ममरणरूप संसार छे, परंतु ईश्वरार्पणबुद्धिएकरी समत्वबुद्धियुक्त स्वधर्मनां कर्मोमां जे मनुष्य प्रवर्त्ते छे ते, बंध छे स्वभाव जेनो एवां कर्मोना पण बंधस्वभावने निवर्ते छे; अने ते ईश्वरार्पित कर्मोना साधने करी सत्त्वशुद्धिरूपा तथा ज्ञानोत्पत्तिलक्षणा संसिद्धिने पामे छे.

कर्मनां इष्ट फल थाय अने अनिष्ट फल न थाय एवी व्यवस्था.

पूर्वे विद्वानो पण सत्त्वशुद्धिसाधनभूत कर्मना क्रमेकरी मोक्ष प्रति जवा प्रवृत्त हता. यद्यपि पूर्वकृत धर्माधर्मादि संस्कार वर्तमान जन्मादिमां अभिव्यक्त थया होय ए रूपा **प्रकृति**, ते स्वप्रकृतिसदृश सर्व जन्तु चेष्टा करे छे,—अने इन्द्रियोनां शब्दादि इष्ट विषये राग अने अनिष्ट विषये द्वेष अवश्यंभावी छे,—ते रागद्वेषपुरःसर ज ज्यारे पुरुषनी 'प्रकृति' स्वकार्यमां प्रवर्त्ते छे,—त्यारे स्वधर्मनो परित्याग अने परधर्मनुं अनुष्ठान थाय छे. तथापि शास्त्रदृष्टि विद्वानो ते प्रकृतिने वश न थतां पुरुषकारवते स्वधर्ममां प्रवर्त्ते छे.

कर्मोना फलनो संग त्यजीने जे जन सर्व कर्मो ईश्वरार्पण करे छे, ते जन,—जेम जले करी पद्मपत्र लेपातुं नथी तेम,—ते कर्मोए करी लेपातो नथी. ते कर्मोनुं फल केवल सत्त्वशुद्धिमात्र ज तेने थाय छे.

कर्मो ईश्वरार्पण करवां.

ए प्रकारे कर्मयोगनिष्ठानुं परम **रहस्य** ईश्वरशरणता[1] छे; ईश्वरार्पणबुद्धिए करेलां कर्मो धर्माधर्मबंधनरूप थतां नथी.

---

1 शरण=संसारार्तिहरणार्थ आश्रय.

परंतु सत्त्वशुद्धिद्वारा ज्ञानप्राप्तिनां साधन थाय छे. ते ज सर्व हितोनुं हिततम छे. अने कर्मयोगनिष्ठानुं फल सर्व वेदान्तसारविहित सम्यगूदर्शन–ज्ञान–छे.

प्रवृत्तिलक्षण धर्मनी सीमा तथा फल.

संक्षेपमां प्रवृत्तिलक्षण धर्मनां कर्मोनां फलनी सीमा चक्राकारा अने परिमिता छे. कर्म अज्ञानमूलक छे. अज्ञानथी भेदबुद्धि थाय छे. जेमां भेदबुद्धि थाय छे तेमां अनुकूल ज्ञान किंवा प्रतिकूल ज्ञान थाय छे. जेमां सुखनुं साधन अनुकूलज्ञान थाय छे तेमां राग थाय छे, जेमां दुःखनु साधन प्रतिकूल ज्ञान थाय छे तेमां द्वेष थाय छे; ते रागद्वेषयुक्त प्राणीए करेलां शुभाशुभ कर्मो धर्माधर्मरूप अपूर्वनां जनक छे. तेओनां फल, स्वर्गनी, नरकनी, वा आ लोकनी, प्राप्ति छे. त्हिं कर्मफलनो भोग थाय छे, किंवा कर्मफल भोगवतां नवां कर्म थाय छे; ते कर्मना फल भोगववा पुनः जन्ममरण थाय छे. एम सामान्य रीत्या सर्व प्राणीओने पुनरावृत्ति किंवा दुःसह दुःखमय संसार चक्रमंडलमां भ्रमण थाय छे. तेमां कोइ विरल पुरुषने अनेक जन्मोनां सुकृतेकरी पुण्यसंचय थयो होय तेना योगे सत्शास्त्रनो अने सत्समागमनो योग थाय छे. तेवा सत्समागमी विरल पुरुषो आसक्तिवर्जित थइ ईश्वरार्पणबुद्धिए स्वपर उपकारनां स्वधर्मनां महत् शुभकर्मो करे छे, तेथी सत्त्वशुद्धि थाय छे; जेथी निःश्रेयसरूपा ज्ञाननिष्ठानी योग्यता आवे छे; अने पूर्वोक्त चक्रमंडलमांथी मुक्त थवानुं द्वार मले छे. प्रवृत्तिलक्षण धर्मनुं जे फल ए ज अभ्युदय छे. परंतु त्हिं विरमवानुं नथी. ए साधनथी साध्य जे निःश्रेयस छे तेनी प्राप्तिना मार्गे चढाय त्यारे ज ए प्रवृत्तिलक्षण धर्मथी जनित अभ्युदय सफल गणाय छे; अने तेम

थए ज मनुष्यनो उत्तरोत्तर उच्चतर उच्चतम थवानो उत्साह तथा महाशय, ते सार्थक थाय छे. तेम थवामां मुख्य अधिकरण अन्तःकरण छे.

अंतःकरणनी शुद्धि.

प्राणीनुं ते अन्तःकरण किंवा सत्त्व, दर्पण समान छे. जेम दर्पणमां यथावत् प्रतिबिंब ग्रहण करवानी योग्यतामां निर्मलतानी अने निश्चलतानी पूर्ण अपेक्षा छे, तेम अन्तःकरणमां यथार्थ ज्ञान ग्रहण करवानी योग्यतामां पण अन्तःकरणनी निर्मलतानी तथा निश्चलतानी संपूर्ण अपेक्षा छे.

जेम शुभकर्मो अंतःकरणनी निर्मलताना हेतु छे; तेम इष्टदेवनी उपासना, ए अंतःकरणनी निश्चलतानो हेतु छे.

जेम स्थूल देहमां वात, पित्त, कफ, ए त्रिदोष छे, अने तेना निवारणार्थ आयुर्वेद छे; तेम अन्तःकरणमां पण मल, विक्षेप, (स्वरूपनुं) अज्ञान, ए त्रिदोष छे. तेना निवारण सारू कर्मकाण्ड, उपासनाकाण्ड, ज्ञानकाण्ड, ए रूप वेद छे. ते वेद, प्रत्यक्ष अनुमान (प्रमाणोए करी) अनवगत–सर्व प्राणीओने अभीष्ट जे इष्टनी प्राप्ति अने अनिष्टनो परिहार–तेओना उपायना प्रकाशन अर्थ तत्पर छे.

अंतःकरणना त्रिदोष अने तेना उपाय.

अन्तःकरणनो मलदोष ते पापरूप छे. ते पापरूप मलदोषेकरी अन्तःकरणमां जन्मजन्मान्तरनी अनेक वासनाओ होय छे. तेओएकरी वर्तमान जन्मविषये पण पापाचारमां वर्ती मनुष्यो बहिर्मुख रहे छे. एथी सत्शास्त्रना विचार विषये अने सत्समागम विषये तेओनी रुचि हती नथी. निष्काम शुभकर्मोरूप उपायेकरी ते पापरूप मलदोष दूर थाय छे. ए

उपाय वेदना कर्मकाण्डेकरी प्रकाशित छे. अने ते कर्मोसंबंधमां पूर्वे विचार थइ गया छे.

विक्षेप दोषनो उपाय उपासना.

अन्तःकरणनो विक्षेप दोष ते चंचलतारूप छे. ते चंचलतारूप विक्षेप दोषेकरी अन्तःकरण प्रतिक्षण रजोगुणे आकृष्ट थइ विषयो प्रति चलन करे छे. ए चंचलताथी ज शास्त्रनां हितकारी वचनो श्रवणते पठतां सते पण ते वचनोनुं, बहिर्मुख मनुष्योना अन्तःकरणमां, ग्रहण धारण नथी थतुं. ध्येय वा ज्ञेय इष्टनी उपासनारूप उपाये करी ए चंचलतारूप विक्षेप दोष निवृत्त थाय छे. ए उपाय वेदना उपासनकाण्डेकरी प्रकाशित छे.

ते उपासन किंवा उपासना नाम उपास्यना अर्थवादमां जेवुं देवतादिनुं स्वरूप श्रुतिएकरी जणाय छे तेवुं, मनेकरी 'उप' नाम समीप जइ लौकिकप्रत्ययना अव्यवधानसहित[1], '**आसन**' नाम चिन्तन, अथवा यथाशास्त्र समर्थित किञ्चित् आलंवन लइने तेमां तेथी विलक्षण-प्रत्यय-अनन्तरित समानचित्तवृत्तिनुं सन्तानकरण, ए उपासन. अर्थात् विषयाकारा वृत्तिना तिरस्कारपूर्वक अन्तःकरणनी वृत्ति इष्टदेवना स्वरूपाकारा करवी ए उपासना. ते उपासना यथार्थ संपूर्ण थाय तो ते उपासक, उपास्य इष्टदेवसह, अभिन्न थाय छे. उपासकना पोताना लौकिकआत्मा-देह-ना अभिमानवत् उपास्य देवना स्वरूपे आत्माभिमाननी अभिव्यक्ति, ते उपासकने थाय छे. ए उपासनाना प्रयत्नथी अन्तःकरणनी चंचलता दूर थवानो अभ्यास थाय छे, ए अन्तःकरणनी—चित्तनी—वृत्तिना निरोधना उपायो योगशास्त्रमां बहु सारा प्रकारे वर्ण्या होय छे.

१ दीर्घकाल—आदर—निरन्तर-रूप विशेषण त्रयनो अर्थ अत्र छे.

अज्ञान दोषनो उपाय-ज्ञान.

अन्तःकरणनो अज्ञानदोष ते स्वरूपना अज्ञानरूप छे. एनो उपाय वेदना ज्ञानकाण्डेकरी प्रकाशित छे. अज्ञाननी आवरण[1]-विक्षेप[2]नात्मिका बे शक्ति छे. जेम अल्पमेघ, अनेक योजनना विस्तारवाला आदित्यमंडलने, द्रष्टानी दृष्टिना मार्गना आच्छादनेकरी, आच्छादे छे, तेम आवरणशक्तिवाळुं अज्ञान पोते तुच्छ–परिच्छिन्न–(अल्प) सते पण, असंसारी अपरिछिन्न आत्माने वस्तुतः आवरणनो अभाव सते, द्रष्टानी बुद्धिना आच्छादनेकरी ते आत्माने आच्छादे छे, एम उपचारथी कहेवाय छे. जेम स्वअज्ञाने करी आवृता रज्जूमां सर्पत्वनी संभावना थाय छे, तेम ए अज्ञाननी आवरणशक्तिए आवृत आत्मामां कर्तृत्व-भोक्तृत्व-सुखदुःखमोहात्मक तुच्छ-संसारभावना संभवे छे. जेम रज्जुनुं अज्ञान, पोते ढांकेली रज्जुमां पोतानी शक्तिवते, सर्पादिकने उपजावे छे, तेम अज्ञान पण, स्वावृत आत्मामां, विक्षेपशक्तिवते, प्रपंचने उद्भावे छे. ज्ञानरूप उपायेकरी ए अज्ञानदोष निवृत्त थाय छे. ए ज्ञान वेदान्तनो विषय होवाथी अत्र अनेक प्रकारे पुनः पुनः निरूप्यमाण छे.

कर्म-उपासनानो समुच्चय.

एम अन्तःकरणनी शुद्धि तथा एकाग्रता अर्थे कर्मनी अने उपासनानी आवश्यकता छे. पूर्वे, अभ्युदय-निःश्रेयस-साधनवर्णाश्रमादिलक्षणधर्मनी प्रवृत्ति समये ए प्रकार अधिक अनुकूल हतो.

---

१ सच्चिदानंद स्वरूपने आवरे–ढांके–तेथी आवरणशक्ति. आवरणशक्तिए करी सत्-चित्-आनंद अद्वय आत्मामां असत्-जड-दुःख द्वैत एवो विपरीत व्यवहार संपादित थाय छे. २ ब्रह्मादिस्थावरान्त, जलबुद्बुदवत्, नामरूपात्मक जगतने विक्षेपे-सृजे-तेथी विक्षेपशक्ति. विक्षेपशक्तिए करी स्थूल-सूक्ष्म प्रपंच तथा तेनुं ज्ञान थाय छे.

अधुना ए कर्म-उपासननी पृथक् मर्यादा थती नथी; किन्तु कर्मउपासननो समुच्चय प्रकार अनुकूल प्रतीत थाय छे.

जे अन्तर्यामी ईश्वरेकरी आ विश्व व्याप्त छे, जे अन्तर्यामी ईश्वर सर्व प्राणीओना हृदयदेशमां वसे छे, अने जेथी प्राणीओनी प्रवृत्ति थाय छे, ते ईश्वरने शरण जइ स्वकर्मोना अनुष्ठानथी पूजतां, तेना प्रसादथी अन्तःकरणनी निर्मलता तथा निश्चलता प्राप्त थइ ज्ञाननिष्ठायोग्यतालक्षणा सिद्धि प्राप्त थाय छे; अने अन्ते परमपुरुषार्थरूप ईश्वरनुं परमपद पमाय छे.

ईश्वरपूजन.

ते सर्वव्यापी अन्तर्यामी ईश्वरना पूजननो प्रकार, वसिष्ठ मुनि आ प्रमाणे वर्णे छेः—

"येन केन प्रकारेण यस्य कस्यापि देहिनः ।
सन्तोषं जनयेद्राम तदेवेश्वरपूजनम् ॥"

'हे राम! जे कोइ प्रकारे (मन-वाणी-कर्म) करी जे कोइ पण देहीने सन्तोष उपजावे ते ईश्वरनुं पूजन छे.'

एम ईश्वरसमर्पणबुद्धिए निष्काम थइ परोपकारनां कर्मो जे पुरुष करे छे, तेने, यज्ञादि[1]कर्मथी अने अष्टांगयोगरूप उपासनथी जे फलनी सिद्धि थती अने थाय, तेवी सिद्धि, ईश्वरना अनुग्रहथी प्राप्त थाय छे.

कर्म-उपासनानुं फल ज्ञान.

कर्मना तथा उपासनाना कोइ पण प्रकारेकरी ज्ञाननिष्ठायोग्यतालक्षणा सिद्धिने प्राप्त पुरुष थाय छे, त्यारे तेना अन्तःकरणनो तृतीय दोष-आवरणविक्षेपशक्तिमत् अज्ञान किंवा अविद्या—जे आत्माअनात्माना इतरेतरअध्यासरूप छे—तेनी ज्ञानरूप उपायेकरी निवृत्ति थाय छे. जेणे करी जणाय ते **ज्ञान.** ज्ञाननुं आवरक अज्ञान तेनी निवृत्ति—तिरस्कार—थये, परम

---

१ देवताना उद्देशेकरी द्रव्यनो त्याग.

पुरुषार्थनी—आत्यन्तिक निःश्रेयसनी—सिद्धि थाय छे. ज्ञान ए ज सर्वनुं सर्वोपरि फल छे.

सत्शास्त्रना उपदेशनो देहइन्द्रियविषे आरोह ए **कर्म** छे; ते कर्मना अनुष्ठानथी बुद्धिनी शुद्धि थाय छे. सत्शास्त्रना उपदेशनो बुद्धिविषे आरोह ए **उपासना** छे; ते उपासनाथी अन्तःकरण ज्ञाननिष्ठाने योग्य थाय छे. अने ते सत्शास्त्रोक्त ज्ञाननिष्ठानो चिदाभास स्वयंप्रकाश जीवविषे आरोह जे सम्यक्दर्शनेकरी थाय ए **ज्ञान.** जन्मथी आरंभीने एओनी उत्तरोत्तर फलता छे.

श्रीभगवान् वदे छे केः—

"सर्वं कर्माखिलं पार्थ ज्ञाने परिसमाप्यते।"

भ. गी. ४—३३.

'अहो पार्थ! सर्व अखिल कर्म, मोक्षसाधन जे ज्ञान, तेमां समाप्त थाय छे नाम अन्तर्भूत थाय छे'. जे ज्ञानेकरी पापने (दुःखने) तरी जवाय छे, अने जे ज्ञानेकरी ब्रह्मादि स्तम्बपर्यंत भूतो अशेषेकरी, आत्मामां-ईश्वरमां-प्रत्यक्ष देखाय छे; अर्थात् जे ज्ञानेकरी क्षेत्रज्ञ ईश्वरनुं एकत्व प्रत्यक्ष देखाय छे. ए विशिष्ट ज्ञाननुं एवुं अलौकिक माहात्म्य छे.

ज्ञाननां साधन.

ज्ञान ए ज ज्ञानकाण्डरूप वेदान्तशास्त्रनो विषय छे. ए ज्ञाननां कर्म तथा उपासना ए **बहिरंग**[1] साधन छे; अने विवेक, वैराग्य, षट्संपत्ति[2], मुमुक्षुता; श्रवण; मनन, निदिध्यासन; ए सप्त[3] **परंपराथी**

१. अंगथी—शरीरथी-बाह्य, दूरनां. २ विवेकथी नित्य-अनित्यनो विचार करीने विपत्तिरूप अनित्यनो विरागवते त्याग करतां खाली थता अन्तःकरणमां सिंचवा योग्या—शम, दम, उपरति, तितिक्षा, श्रद्धा, समाधान, ए छ रूप संपत्ति. ३ विवेकादिचतुष्टय ज्ञाननां 'साधन' छे, श्रवणादित्रय ते ज्ञानना 'हेतु' छे एवो भेद पण गणाय छे.

अन्तरंग[1] साधन छे; अने ब्रह्मनिष्ठ श्रोत्रिय गुरुना मुखारविंदथी महावाक्योना यथायोग्य अर्थनुं श्रवण ए **साक्षात् अन्तरंग** साधन छे.

निष्काम शुभकर्मोना अनुष्ठानथी धर्मनी उत्पत्ति थाय छे, धर्मोत्पत्तिथी पापनी हानि थाय छे. पापरूप मलनी हानि थये सत्त्वशुद्धि थाय छे, ते शुद्ध अन्तःकरणमां संसारयाथात्म्य अवबोध थाय छे. तेथी विवेक वैराग्य षट्संपत्ति अने मुमुक्षुत्व प्राप्त थाय छे. एम उत्तरोत्तर साधनथी अविद्यानो उच्छेद थइ ज्ञाननिष्ठायोग्यता आवे छे.

जे (साधन) सते ज नियमेकरी जे (साध्यसिद्ध) थाय अने जे (साधन) न सते जे (साध्यसिद्ध) न थाय ते ज साध्यनुं **साधन** छे. एम होवाथी साधनसंपन्न पुरुषने ज साध्य ज्ञाननो आविर्भाव थाय छे. तेथी विवेकादिसाधनसंपन्न प्रमाता ते ज वेदान्तज्ञाननो अधिकारी गण्यो छे.

मनुष्योना चार वर्ग.

शुभाशुभकर्मना परिपाकवशथी उच्चनीचस्थितिमां संसरतां सर्वे प्राणीओ स्वभावथी ज दुःखनां द्वेषी अने सुखनां अनुरागी देखाय छे. मनुष्योना चार वर्ग थाय छेः–(१) पामर, (२) विषयी, (३) जिज्ञासु, (४) मुक्त.

पामर.

शास्त्रना संस्कारथी रहित पशुतुल्य, आ लोकना निषिद्ध अने विहित भोगो विषे आसक्त, अने तेवा विषय-भोगमां ज सुखनी अलं-पूर्ण-बुद्धिवाळां जे प्राणी ते '**पामर**'[2] छे. तेओनी संख्या सर्वथी महोटी छे.

---

१ अंगमां–शरीरमां अन्तर्, समीपनां, प्रत्यक्ष फलप्रद. २ 'पा' नाम पालनार जे त्रयी धर्म ते 'मर' नाम मराय छे जेणे ते 'पामर'. मूर्ख, नीच, खल.

विषयी.

शास्त्रानुसार विषयोने भोगवतां आ लोकना अथवा परलोकना भोगोना निमित्त जे मनुष्यो सकाम कर्मो करे छे अने तेवा विषयसुखमां ज जे अलंबुद्धि माने ते '**विषयी**' कहेवाय छे. तेओमांथी कोइकने कोइ सुभाग्यना योगथी सत्समागमेकरी विषयसुखथी उपरि उच्च सुखनी इच्छा थाय छे, अने जो सद्भागी होय तो सन्मार्गस्थ थाय छे, तेनी बुद्धिमां प्रकाश थइ बुद्धिवर्द्धन थाय छे, अने ते अन्ते यथार्थ धर्मजिज्ञासु अथवा ब्रह्मजिज्ञासु थाय छे. परंतु बहु करीने तेवा विषयीओ दुर्भागी होय छे, अने ते दुर्भाग्ये अज्ञानथी अने मिथ्या स्वाभिमानथी ते उच्च सुखना जे उपाय नहि तेमां उपायबुद्धि करी प्रवर्ते छे. तेवाओनो बुद्धिप्रकाश अथवा बुद्धिवर्धन थतुं नथी. तेओ जननमरणरूप चक्रदोलामां उंचे नीचे भ्रम्यां ज करे छे.

पूर्वोक्त पामरप्राणी अने विषयी मनुष्यो ज्ञानना अधिकारी नथी.

मुमुक्षु.

मुमुक्षुओ ज मात्र, निःशेष दुःखोच्छेदननो तथा निरतिशयानन्दनो हेतु जे ज्ञान तेना अधिकारी छे. तेओने उत्तम संस्कारेकरी सत्शास्त्रना श्रवणथी आपाततः वेदान्तज्ञान होय छे.

जे विवेकी, विरक्त शमादिगुणशाली पुरुष, भवबंधनी विमुक्ति अर्थ बाह्यविषयोना सुखनी स्पृहा त्यजीने आत्मवस्तुनी सम्यक् हितोक्तिमां अने विचारमां प्रवर्ते छे, अने जे पुरुष, अज्ञानकल्पित अहंकारादि देहान्त बन्धोने स्वस्वरूपना अवबोधे करी, मूकवानी इच्छा करे छे, ते पुरुष '**मुमुक्षु**' वदाय छे; तेवा साधनसंपन्न मुमुक्षु, अशेष क्लेश-

उत्तम अधिकारी.

निवर्तक तथानित्यनिरतिशयानन्दप्रापक अत्यन्त उत्तम जे ब्रह्मात्मैकत्वविज्ञान तेना अधिकारी थाय छे. तेओमां विशुद्धसत्त्व अने समाहितचेता पुरुष उत्तम अधिकारी छे. तेने वेदान्तश्रवणमात्ररूप उपायेकरी आत्मा[1]-अनात्माना[2] विवेकपूर्वक ब्रह्मात्मैकत्वबोधे ज्ञान थाय छे. एवा मुख्याधिकारीने वेदान्तविचार ज, प्रत्यक् अभिन्न ब्रह्मना अपरोक्षज्ञानद्वारा, मुख्य मोक्षकारण छे.

मंद अधिकारी.

जे पुरुष विवेकवैराग्यसंपन्न सते रजोगुणलेशनी अनुवृत्तिए विक्षिप्तचेता हइ सहसा चित्तनुं एकाग्रत्व नथी पामता, ए मंद अधिकारी छे. तेने अष्टांगयोग ए ज पूर्वोक्त ज्ञाननो उपाय छे.

ज्ञान सारु योग्यता.

पुरुषने, 'पोते उत्तम वर्गमां छे' एम मानवानी स्वाभाविकी वृत्ति होय छे. परंतु ते वर्गनी पोतामां योग्यता नथी हती तो, मात्र ते वर्गमां पोताने गण्याथी तेनुं फल मलतुं नथी. एटलुं ज नहि किन्तु हानि थाय छे. एथी हितकारी कर्त्तव्य तो योग्यता संपादिता करवी ए ज छे. पात्रता विना पदार्थनी प्राप्ति थती ज नथी. आरोप करे अधिकार आवतो नथी; मात्र विकलता अथवा बुद्धिनाश ज गणाय छे. उत्तम वर्गमां जवातुं नथी, कनिष्ठमां रहेवातुं नथी, तेथी उभयथी भ्रष्ट ते थाय छे.

"अकृत्वा शत्रुसंहारमगत्वाऽखिलभूश्रियम् ।
राजाहमिति शब्दान्नो राजा भवितुमर्हति ॥"

वि० चू० ६६.

---

१. आत्मानाम स्थूलसूक्ष्मकारणशरीरत्रयविलक्षण, पंचकोशव्यतिरिक्त, अवस्थात्रयसाक्षी, सच्चिदानन्दरूप. २ अनात्मानाम अनृत जड दुःखात्मक समष्टिव्यष्टि-आत्मक स्थूलसूक्ष्मकारणशरीरत्रय.

'शत्रुओनो संहार न करी, अखिल भूश्रीने न पामी, हुं 'राजा' एवा शब्दथी राजा थवाने कोइ योग्य थतुं नथी.' ए यथार्थ छे.

ते योग्यता अर्थ अनेक कर्तव्य, अनेक ज्ञातव्य अने अनेक प्राप्तव्य छे. पुरुषप्रयत्नानुसार ते कर्त्तव्यनी, ज्ञातव्यनी, अने प्राप्तव्यनी सिद्धि थाय छे. महाभागी अधिकारीओए मनुष्यताना साफल्य अर्थ, मुख्यत्वेकरी, सत्संग, सत्शास्त्रविचार, अने हरिप्रसादकर निष्काम सत्धर्मकर्म अवश्य **'कर्तव्य'** छे. जीव-ईश्वर-माया-जगत्नां तत्त्वअतत्त्व,-हेयउपादेयअर्थ किंवा त्याग-ग्रहण सारू,-**'ज्ञातव्य'** छे. अने सत्संग अने बहिरंग तथा अन्तरंग साधनोनुं फलभूत ब्रह्मात्मैकत्वज्ञान ज **'प्राप्तव्य'** छे.

श्रवण-मनन-निदिध्यासन ए कर्त्तव्य कोटीमां छे.

श्रवण-मनन-निदिध्यासन.

परमात्माना यथार्थदर्शन—ज्ञान—थये सते, जे सर्वपुरुषार्थनी सिद्धि थाय छे ते **दर्शन**, श्रवण, मनन, निदिध्यासन ए त्रयपूर्वक थाय छे. ते **श्रवण** पूर्वे आचार्यथी तथा आगमथी शृणी, पुनः तेनुं **मनन** तर्के अने उपपत्तिएकरी-विचारी, पश्चात् निदिध्यासन नाम 'एम ज ए छे अन्यथा नथी एम निर्धारित—निश्चयेकरी ध्यान-करवुं. ए श्रवण[1]-मनन-निदिध्यासननो क्रम छे.

"श्रोतव्यः श्रुतिवाक्येभ्यो मन्तव्यश्चोपपत्तिभिः।
मत्वा च सततं ध्येय एते दर्शनहेतवः ॥"

सामान्यतः प्रसिद्ध परंतु विशेषतः अप्रसिद्ध ब्रह्मात्मैकत्वज्ञान तेना स्वरूपना साक्षात्कारअर्थ विचारप्रवृत्ति-मीमांसा-

---

१. एकरस ब्रह्ममां वेदान्तोनो (उपनिषदोनो) (शब्द) शक्तितात्पर्य निश्चय ए **श्रवण**; तेमां ज श्रुतिअनुसारिणी युक्तिए संभावनानुं आधान ए **मनन**; एम श्रुत मत ब्रह्ममां बुद्धिनुं स्थैर्य ए **निदिध्यासन** छे.

फलोपकारिणी छे. ते विचारनां श्रवण-मनन-निदिध्यासन ए अंग छे. तेणे करी ब्रह्मात्मभावनी अवगति थाय छे.

ए अन्तरंग श्रवणादि साधनोपकरी जे ज्ञातव्य छे ते अति संक्षेपतः आ छेः—प्रथम जीव-जगत्-परमात्मा ए त्रिवर्गनुं ज्ञान; किंवा अहं-हुं-द्रष्टा; त्वं-तुं-दृश्य; तत्-ते-अदृश्य सर्वानुगत परमेश्वर; ए हुं-तु-ते-नी त्रिपुटीनुं शास्त्राचार्योपदेशजनित ज्ञान. ए त्रिवर्गनो अन्तर्भाव द्विवर्गमां थाय छेः—आत्मा-अनात्मा, किंवा चैतन्य-जड. पुनः ए द्विवर्गनो पण एक वर्ग एकत्व-परिशेष थाय छे.

ज्ञातव्य.

पंचदशीमां आज्ञापे छे केः—

"सदा विचारयेत्तस्मात् जगज्जीवपरात्मनः ।
जीवभावजगद्भावबाधे स्वात्मैव शिष्यते ॥१२॥
नाप्रतीतिस्तयोर्बाधः किन्तु मिथ्यात्वनिश्चयः ॥

चित्रदीप.

समस्तप्रपंचनी मूलकारणभूता अविद्या-अज्ञान-तम-प्रकृति-मोहादिशब्दवाच्या सर्वानर्थबीजभूता अनिर्वचनीया **माया** जे आत्माने—सच्चिदानन्दब्रह्मने—आश्रिता छे ते मायानी निवृत्ति, अन्ते यथाभूतार्थ ज्ञानेकरी थये, एक ज अद्वितीय परमात्मा ज प्रकाशे छे. ते शास्त्राचार्यथी जनित ज्ञान, सात्त्विकज्ञान, छे. ते ज्ञाने करी परस्परव्यावृत ब्रह्मादिस्थावरान्त विभक्त सर्वभूतोमां, अनुस्यूत अविभक्त एक अद्वय निर्विकारभाव परमात्मतत्त्व देखाय छे. ते परमात्मा आ प्रकारे वर्ण्यो छे. 'स्वमां (पोतामां) जीवभावनो, स्वथी अतिरिक्त अन्यमां जगत्भावनो, बाध थये, प्रत्यक् अभिन्न ब्रह्म—प **मात्मा**—ज एक अवशेष रहे छे.'

ए संबंधमां परंपराथी असंख्य विचारो थता आव्या छे,

अनेक ग्रंथो गुंथाया छे, अने बहु संवादो चाल्या छे; परंतु एनुं मोक्षफलक सम्यक्ज्ञान, ईश्वरानुग्रह गुरुप्रसाद शास्त्रप्रसाद अने स्वात्मसहाय किंवा पुरुषकार, एओ विना थतुं नथी. ए कारणथी '**तत्त्वोपदेश**'मां **शंकर**भगवान् स्वशिष्य **मंडनमिश्र** वार्तिककार प्रति वदे छे केः—

"यावदायुस्त्रयो वन्द्या वेदान्तो गुरुरीश्वरः ।
मनसा कर्मणा वाचा श्रुतिरेवैष निश्चयः" ॥८५॥

'ज्यां लगी आयु होय त्यांलगी मन, कर्म अने वाणी एओए करी वेदांत गुरु अने ईश्वर ए त्रय वंद्य छे. ए श्रुति छे, अने ए ज निश्चय छे.'

ज्ञान.

ए जीव-जगत्-परमात्मा-नी त्रिपुटीना **सामान्य** ज्ञानथी ते त्रिपुटीना भेदभ्रमना अधिष्ठान नित्य स्वप्रकाश सच्चिदानन्दरूप एक अद्वितीय परमार्थ सत्यना तत्त्वनुं **विशेष** ज्ञान विलक्षण छे. सामान्य ज्ञानमां प्रकाशपूर्वक ज्ञाता ज्ञान अने ज्ञेयनी अपेक्षा होय छे. वेदान्तनिर्णीत अपूर्व स्वयंप्रकाश अधिष्ठानना विलक्षण विशेष ज्ञानविषये, अज्ञानमात्रनी निवृत्ति करवानी छे.

"ज्ञानेन तु तदज्ञानं येषां नाशितमात्मनः ।
तेषामादित्यवत् ज्ञानं प्रकाशयति तत्परं" ॥

भ. गी. अ. ५ । १६.

जे अज्ञानेकरी जन्तुनुं आत्माअनात्मानुं विवेकज्ञान आवृत थयुं छे तेथी ते मोहवश थया छे. परंतु जे जन्तुओनुं ते पोतानुं अज्ञान आत्माअनात्माविषयक विवेकज्ञानेकरी नाशित थाय छे, ते जन्तुओनुं अनावृत ज्ञान, आदित्य जेम समस्तरूपने-वस्तुमात्रने-प्रकाशे छे तेम, 'तत्पर'ने नाम परमार्थतत्त्वने-सर्व ज्ञेय वस्तुने, प्रकाशे छे.

स्वयंप्रकाश वस्तुने देखवाने अन्य प्रकाशनी अपेक्षा नथी. मात्र आवरण दूर करवानी ज तहिं अपेक्षा छे. ए आवरण द्विविध संभवे छे. एक आवरण प्रकाशना अने द्रष्टाना अन्तरालमां होय अथवा एक आवरण द्रष्टानी दृष्टिगत होय. सूर्य वा दीपक, अपारदर्शक मेघे वा कइ अन्य आवरणे आच्छादित होय, ते अन्तराल आवरण छे. कोइ मनुष्यना अक्षि उपर पटबंधन होय किंवा ते अक्षि दूषित वा अशक्त होय, ए बीजा प्रकारनुं आवरण छे. एक मेघादि अन्तरिक्ष निष्ठ आवरण छे अने एक द्रष्टानिष्ठ आवरण छे. सूर्य वा दीपक देखावामां ए आवरणो दूर करवानी ज अपेक्षा छे; अन्य प्रकारनी अपेक्षा नथी. तेम जीव-जगत्-परमात्माना स्वयंप्रकाशस्वरूप तत्त्वना दर्शनअर्थ अज्ञानरूप आवरणने ज दूर करवानी अवश्य अपेक्षा छे. तेमां सूर्यनुं मेघादि आवरण दूर करवुं ए मनुष्यतंत्र नथी. किन्तु द्रष्टा जीवनिष्ठ आवरण,—पटबंधन, दृष्टिदोषादि—दूर करवुं ए मनुष्यतंत्र छे; अने ते आवरणदूरीकरण साध्य छे; अने ते ज मुख्यत्वे कर्तव्य छे. कारण मेघादिना अन्तराल आवरणे करी सूर्यादि आच्छादित न होय तो पण, द्रष्टृनिष्ठ आवरण होय त्यां सुधी सूर्यना प्रकाशने पण जीव जोइ शकतो नथी. मेघादि आवरण बहुवार रहेवा पण संभव नथी, तेम ते अनायासे स्वतः दूर थइ जाय छे. परंतु दृष्टृनिष्ठ-जीवनिष्ठ-आवरण तो पुरुष-प्रयत्न कर्या विना दूर थतुं ज नथी. एथी जीवगत अज्ञानआवरणनुं दूरीकरण करवा संपूर्ण पुरुषप्रयत्न कर्तव्य छे; अने ते साध्य छे. जीवनिष्ठ अज्ञानआवरणनी निवृत्ति करवामां ज आपण जीवोनी कृतकृत्यता छे.

ज्ञानना प्रतिबंध.

ए जगत्‌निष्ठ नामरूपादि अन्तराल आवरण तथा द्रष्टृजीव-

आवरणदूरी-करण.

निष्ठ अज्ञानरूप आवरण एओने दूर करवा वेदान्तादिनुं ज सम्यक्ज्ञान समर्थ छे; अन्य नहि. वेदान्तशास्त्रो अविद्याकल्पित वेदिता-वेद्य-वेदनादि भेदने दूर करे छे. ए अज्ञानजनित भेद दूर थये ब्रह्मतत्त्व ज प्रकाशी रहे छे.

स्थूलसृष्टिना ज्ञान अर्थ बाह्यइन्द्रिय-दृष्टि-ना आवरणने दूर करवानी आवश्यकता छे, तेम तत्त्वज्ञान-अर्थ-सर्वात्मज्ञानअर्थ-आन्तर-इंद्रिय-बुद्धि—ना आवरणने दूर करवानी संपूर्ण आवश्यकता छे. अन्तर्दृष्टिनुं किंवा बुद्धिनुं आवरण ए सम्यक् ज्ञानो प्रतिबंध छे. ते ज्ञानप्रतिबंध बहु प्रकारना होय छे. रागद्वेष; संशय, असंभावना, विपरीतभावना; तथा विषयासक्ति, प्रज्ञामान्द्य, कुतर्क, विपर्ययदुराग्रह. पुनः पुनः विचारेसते पण प्रतिबंधेकरी पुरुष, तत्त्वने जाणतो नथी. ते प्रतिबंध—भूत, वर्तमान, भावी, प्रकारेकरी—त्रिविध छे. ते प्रतिबन्धो होय तो, अधीतवेदान्त पुरुष होय तो पण, तत्त्वज्ञान, प्रकट थतुं नथी. एथी ते ते प्रतिबंधना निवर्तनमां उचित साधनो षट्संपत्ति, श्रवणादि, एओएकरी ते ते प्रतिबंधनो क्षय करेथी अधिकारी पोताना—प्रत्यगात्माना—ब्रह्मत्वने पामे छे.

पुरुषकारेकरी प्रतिबंध दूर थये जीवने प्रत्यगात्मस्वरूपनुं सम्यक् ज्ञान थाय छे. एकदेशप्रसिद्धिएकरी अशेष प्रसिद्धि थाय छे; तेम एक जीवसंबंधमां यथार्थ ज्ञान थये ते उदाहरणथी अन्यनुं अशेषनुं ज्ञान थइ शके छे. अने जे प्रबु-

---

१ अतीत इष्टविषयना स्नेहथी अनुसन्धानेकरी श्रवणादिथी तत्त्व जाणवामां आवे नहि, ए **भूत** प्रतिबन्ध; विषयमां आसक्ति, बुद्धिनी मंदता, कुतर्क, उलटो दुराग्रह, ए **वर्तमान** प्रतिबंध; जन्मान्तरहेतु प्रारब्धशेष ए **भावी** प्रतिबंध गणाय छे.

द्धतत्त्व पुरुष थाय छे तेने बंधथी मुक्ति छे, अने एकात्माने नित्यसुखनी अनुभूति छे, ए तो ज्ञानीओने प्रसिद्ध छे.

अधिकारीओनां विचित्र अंतःकरणो.

ए वेदान्तना निःश्रेयसप्रद परमतत्त्वज्ञाननी प्राप्तिनो मुख्य आधार अधिकारीना अन्तःकरणनी अवस्था उपरि छे. त्रिगुणात्मिका अविद्यानुं परिणाम अन्तःकरण, ते त्रिगुणनां न्यूनाधिक असंख्य मिश्रणथी रचायुं होय छे, तेमां पुनः आ सृष्टिनी त्रिगुणात्मप्रकृतिनी असंख्य विकृतिओना संस्कार ते अन्तःकरण उपरि थाय छे, एथी असंख्य अधिकारीनां असंख्येय प्रकारनां अन्तःकरणोनी रुचि पण विचित्रा होय छे. तेवा अधिकारीनी मतिगतिना भेद अनुसार फलमां भेद पडे छे. एथी एवा विलक्षण अन्तःकरणना समाधान अर्थे भिन्नरुचि अनुसार विविध विचारो महात्माओए प्रसिद्ध कऱ्या छे; आवा आशयथी के तेओमांथी जेने जे रुचिकर लागे तेनुं तेणे ग्रहणकरी तेद्वारा तत्त्वज्ञाननी सुखसंपत्ति मेळवी पुरुषार्थ सिद्ध कराय. आ सृष्टिना महामंडलनुं तत्त्वज्ञान

सृष्टिमहामंडलनुं केन्द्र तत्त्वज्ञान छे.

ए केन्द्र छे; अने तेना परिधिसमीप जीवो भ्रमे छे. ते मध्यबिंदुने संपादक सद्विचाररूपा असंख्य त्रिज्याओ छे. तेमांथी गमे तेनो आधार पकडी जे अधिकारी जीव, ज्ञानप्रकाशरूप केन्द्रने संमुख थाय छे, ते जीव, ते वेगवान् चक्रमंडलना परिधिथी केन्द्रने समीप आवतो आवे छे. अने तेनी अज्ञानरूपा छाया उत्तरोत्तर अल्पा अल्पतरा अल्पतमा थइ निवृत्ता थाय छे. अने जे असंख्य जीवो ए ज्ञानकेन्द्रथी विमुख रहे छे, ते जीवो चक्रना दूरपातुक वेगेकरी केन्द्रथी दूर अने दूर भ्रमता जता जाय छे; अने तेओनी अज्ञानरूपा छाया अधिकाधिक वर्धमाना थती रहे छे.

मातापितृसहस्रोथी पण अधिकहितैषी सत्शास्त्रो छे.

प्रक्रिया.

आत्मवस्तु-तत्त्वज्ञान-दुर्बोध होवाथी सत्शास्त्रो पुनः पुनः प्रसंग आणीने शब्दान्तरे तथा अर्थान्तरे ते ज एकगम्य आत्मवस्तुने निरूपे छे. ए ज्ञान-प्रकाश गोलनी विचाररूपा क्रियाओनुं पारिभाषिक नाम 'प्रक्रियाओ' छे.

"यया यया भवेत्पुंसां व्युत्पत्तिः प्रत्यगात्मनि ।
सा सैव प्रक्रियेह स्यात् साध्वी सा चानवस्थिता"॥

बृहदारण्यक-भाष्यवार्तिक प्रथम अ० १. ब्राह्मणं ४. श्लो० ४०२.

'पुरुषोने प्रत्यगात्मामां जेणे जेणेकरी व्युत्पत्ति-ज्ञान-थाय ते ते ज प्रक्रिया इहां साध्वी[1] छे. परंतु ते अनवस्थिता छे;' कारण के अधिकारीनी बुद्धिनुं तारतम्य होवाथी ते प्रक्रियानी व्यवस्था (स्थिति) नथी.

सत्वरजस्तम-प्रकृति प्रमाणे ते प्रक्रियाना विचारो अन्तरमां उतरे छे. कोइ अधिकारीनी बुद्धिने ऋजु तो कोइ अधिकारीनी बुद्धिने कुटिल, कोइ बुद्धिने स्थूल तो कोइने सूक्ष्म, कोइने बाधक तो कोइने साधक, कोइने बोधक शोधक पावक तो कोइने वर्णक स्तावक मोहक, कोइने वाचक लक्षक व्यंजक सूचक तो कोइने आकर्षक आवेशक विचारक, कोइने रेचक शोषक तो कोइने रोचक पोषक तोषक, कोइने उत्तेजक तो कोइने प्रतिबंधक, कोइने परोक्ष तो कोइने प्रत्यक्ष, कोइने प्रवृत्तिसाध्य तो कोइने निवृत्तिसाध्य, कोइने तटस्थ-लक्षण तो कोइने स्वरूपलक्षण,—एम नाना प्रकारना विचारोमांथी कोइ एक वा अनेक रुचे छे. तेमां अज्ञानना निवर्त्तक अने ज्ञानना समर्पक एवा बोधक निर्णायक अने अनुभावक

---

१ फलवती.

विचारो ज श्रेयःसाधकोए ग्राह्य–श्रोतव्य–मंतव्य–निदिध्यासितव्य–छे. इतर विचारो दृश्य–श्रव्य छे, अने कर्तव्य अवश्य व्यवहार साधवामां ज मात्र उपयोगी छे. ए प्रक्रियाओमांनी केटलीक तो संप्रदायना अनेक प्रकारना ग्रंथोमां गुंथेली होय छे अने केटलीक तो संप्रदायविदोना मुखथी परंपरागता होय छे. अधिकारीनी स्थिति अनुसार ते कथाय छे, परंतु ते लिखिता होती नथी.

शास्त्र अने प्रकरण ग्रंथो.

परमात्माविषयक विचारनुं निरूपण मुख्यत्वेकरी तत्संबन्धि शास्त्रमां अने प्रकरणोमां सुवर्त्ते छे. 'एक प्रयोजन उपनिबद्ध अशेषार्थ प्रतिपादक' ए शास्त्रनुं लक्षण छे. अध्यात्मशास्त्रमां ऊहापोहविचक्षण मेधावी विद्वान् पुरुषो उत्तम अधिकारी गणाय छे. तेवा उत्तमबुद्धिमान्नाअर्थे श्रीशंकर भगवान्[1]नां भाष्यसहित उपनिषदो (१), ब्रह्मसूत्रो (२), तथा भगवद्गीता (३), ए प्रस्थानत्रयादिरूप शास्त्रोने महात्माओए संकलित कर्यां छे. तेओना अवलोकनमां असमर्थोना अनुग्रहार्थ वेदान्तसिद्धान्तनो सार–जे आत्मा परमात्मानुं ऐक्य–तेना संग्रहणरूप 'प्रकरणोने'[2] अपि महात्माओए निर्माण कर्यां होय छे. प्रकरणनुं लक्षण आ प्रमाणे छेः—

"शास्त्रैकदेशसम्बद्धं शास्त्रकार्यान्तरे स्थितम् ।
आहुः प्रकरणं नाम ग्रन्थभेदं विपश्चितः" ॥

'शास्त्रना एकदेश–(मुख्य) निर्गुण वस्तु–परमात्मा–

---

१. "उत्पत्तिं प्रलयं चैव भूतानामागतिं गतिं ।
वेत्ति विद्यामविद्यां च स वाच्यो भगवानिति ॥"
'(सृष्टिनां) उत्पत्ति अने प्रलय, भूतोनी आगति अने गति (आवुं–आववुं–जवुं,) अने विद्या तथा अविद्या, एओने जे जाणे ते भगवान् कहेवा योग्य छे.' २ एकार्थप्रतिपादक ग्रंथांश, प्रस्ताव, कर्त

मात्रसह संबद्ध अने [1]शास्त्रकार्यना अन्तरमां स्थित एवा ग्रंथभेदने विपश्चितो प्रकरण कहे छे.'

एवां प्रकरणोथी पण अनेक अधिकारीओनुं कल्याण थइ तेओने सदाप्राप्त निःश्रेयसनी प्राप्ति थइ छे. एथी तेवां प्रकरणोने प्रक्रियारूपे अत्र समर्पण कर्यां छे.

वृत्ति तदाकारा थये ज्ञान अने साफल्य.

जेम यंत्रकला, रसायनकला, चित्रकला, गायनकला, आदि अनेक प्रकारनी कलाओमां तत्संबंधी लेखो मात्र वाच्याथी अर्थसिद्धि थती नथी. तेओना अभ्यासपूर्वक प्रयोगो करवानी पूर्ण आवश्यकता छे, अने शिक्षानुसार तादृशकृतिरूप फल थाय छे, त्यारे ज ते कला प्राप्ता अने सफला थइ गणाय छे, तेम उत्तम वेदान्तशास्त्रसंबंधमां छे. एतद्देशीय आर्योए अभिमत सर्वज्ञकल्प वेदमां वेदान्त—तत्त्वज्ञान—सारभूत गणाय छे. मुक्तिकोपनिषत्‌मां श्रीराम परमात्मा स्वभक्त हनुमान् प्रति वदे छेः—

"तिलेषु तैलवद्वेदे वेदान्तः सुप्रतिष्ठितः ॥"

मुक्तिकोपनिषत् १।९॥

ते तिलोरूप वेदमां तैल—सार—रूप वेदांत सुप्रतिष्ठित छे—सारी रीतिए वर्त्ते छे. ते वेदान्त किंवा तत्त्वज्ञानना उत्तमोत्तम सिद्धान्तो श्रुत मत ज्ञात होय, तदर्थाकारा अन्तःकरणनी वृत्ति थाय, त्यारे ज तेओनुं साफल्य छे.

मुण्डकोपनिषद्‌मां अन्ते वदे छे केः—

"स यो ह वै तत्परमं ब्रह्म वेद ब्रह्मैव भवति" ॥

३. २–९.

---

[1] शास्त्रनु कार्य—अनुबंधचतुष्टय, अधिकारिनिर्णय, गुरुउपसदननुं, अथवा अविरोध, साधन, फल, आदिनुं, विस्तरथी प्रतिपादन करवुं—तेना मां—आवेल. अर्थात् संक्षेपमां प्रतिपादन करवामां स्थित.

विद्याएकरी ज सर्व प्रतिबंध दूर कर्याथी अन्य प्रतिबंध मोक्षने नथी. तेथी लोकमां 'ते जे कोइ ते ब्रह्मने जाणे (ते ब्रह्मने विद्वान्) ब्रह्म ज थाय छे.' ए यथार्थ छे.

तत्त्वज्ञानसंबंधमां **जानन्**[1] ते **भवन्** छे, जाणवुं तेवुं थवुं छे. जाणवा जेवा थवामां जेटलुं अन्तर तेटली ज्ञाननी न्यूनता गणाय छे.

शास्त्रगता अथवा प्रकरणगता कोइ एका किंवा अधिका प्रक्रियाओनुं अवलंबन करी तत्पर थइ जे उत्तम अधिकारी स्ववृत्तिने दृढा तदर्थाकारा करीने स्थित थाय छे ते कृतार्थ अने धन्य धन्य धन्य थाय छे.

अधिकारीनुं कर्तव्य.

यथोक्तकारी अधिकारीए कोइ सद्गुरुद्वारा नानाविध प्रक्रियारूप रेखामांथी कोइ एकानुं दृढ आलंबन करी ते द्वारा अविद्याने अपकृष्यमाणा करवी, अने विद्याने उत्कृष्यमाणा करीने ब्रह्मावगतिरूप केन्द्रनी संप्राप्ति करवी. कोइ एक शास्त्रेकरी वा शास्त्रीया अशास्त्रीया युक्तिओएकरी आ सृष्टिनी उत्पत्ति-स्थिति-लय-आदिना विचारो तथा अभ्युदयलक्षण प्रवृत्तिविषयना विचारो अने निःश्रेयसलक्षणनिवृत्तिना विचारो, यद्वा तद्वा जाणीने, तथा साध्यसाधनसंबंधना प्रकाशननी अनेका श्रुतिस्मृतियुक्तिओना श्रवणे करीने, बुद्धि विक्षिप्ता थइ होय छे, तेनुं कोइ प्रकारे समाधान करी तेने स्वस्था-निर्मला-निश्चला-करी परमपुरुषार्थ जे—सच्चिदानन्द ब्रह्मात्मैक्य स्वरूपावस्थानलक्षण मोक्ष—ए सिद्ध कर[illegible] प्राप्तविवेक पुरुषे बहुधैर्यथी भगीरथप्रयत्न कर्तव्य छे. अ[illegible] क्योए संसिद्ध थएला अधिकारीए प्रमितिजनक [illegible]

---

१. जाणवुं ते थवुं. Knowing is Being. T[illegible]

[illegible] विश्वास पण दृढ करवो. विश्वासमां—श्रद्धामां—जेटली न्यूनता तेटली फलसिद्धिनी दूरता रहे छे.

"यादृशी भावना यत्र सि[illegible]द्धिर्भवति तादृशी।"

ए प्रायशः यथार्थ छे. ए परमपुरुषार्थरूपा सर्वोपरि फलप्राप्तिअर्थ महत्प्रयास पण तेवो ज सर्वोपरि कर्तव्य छे. एवा अनुत्तम फलनो परिपाक थवामां पण अमुक समयनी अपेक्षा छे. एथी स्वअज्ञानथी उद्भवेली कल्पनानुसार तत्काल फल न थाय त्यां अधीर न थवुं. पुरुषप्रयत्नानुसार प्राप्यविषयनी प्राप्ति थाय छे ज. ते प्राप्ति न थाय तेमां पुरुषप्रयत्ननी ज न्यूनता समजवी.

शास्त्र, गुरु, अने शिष्यना ज्ञाननी एकतानी आवश्यकता.

यथार्थ ज्ञाननी प्राप्तिमां ते विषयनुं ज्ञेय शास्त्र, ते शास्त्रना ज्ञाता शास्ता, अने ते शास्त्रना जिज्ञासु शिष्य, ए त्रिपुटीनी संपूर्ण आवश्यकता तो छे ज, अने विशेषमां ए त्रिपुटीनी एकतानी—समानतानी—पण संपूर्ण अपेक्षा छे. ए त्रिपुटीनी एकता थए ज स्वारस्य अभिव्यक्त थइ, शिष्यने फलसिद्धि थाय छे.

"शास्त्रदृष्टिर्गुरोर्वाक्यं तृतीयश्चात्मनिश्चयः।
त्रिधैव यो विजानाति स मुक्तो नात्र संशयः॥"

'शास्त्रनी दृष्टि, गुरुनुं वाक्य, त्रीजो आत्मानो निश्चय, ए त्रण प्रकारे ज जे जाणे ते मुक्त छे. एमां संशय नहि.

तत्त्वज्ञानना तात्पर्यार्थनी यथार्थ प्राप्तिमां तुलायन्त्र[1] समान ए समता—एकता—थवानी आवश्यकता छे. तुलायन्त्रमां शंकु-[illegible]त तुलादण्ड[2], अने ते दण्डना अन्तभागे शिक्याए लटकावे मापनपात्र[3] ए एक भाग; (२) तथा तुलादण्डना

[illegible]नो कांटो. २ तेमांनी कांटावाळी—सोयवाळी दांडी. ३ ते[illegible]ं बांधी लटकावेलां बे ताजुवां.

शंकुना मूलमां प्रवेश करी ते शंकुने धरी रहेनार तुलाधर[1]–
जे ते शंकुना उभय पार्श्वे लंब वलयाकार द्विपक्ष होय छे ते–
द्वितीय तृतीय भाग; ए सर्व भाग मळी तुलायन्त्र सिद्ध थाय
छे. तेमां जे दाय पदार्थनो तोल करवो होय छे ते दाय तथा
परिमाण, पेलां पात्रोमां मूकाय छे. ज्यारे ते तुलादण्डनो शंकु
ते तुलाधरना द्विपक्षना मध्ये आवी, ते शंकु तथा तुलाधर
समता–एकता-पामे छे त्यारे यथावत् तोल थयो गणाय छे.
ज्यां सुधी समतोल न थाय त्यां सुधी ए तुलाधरना द्विपक्ष
मध्ये तुलादण्डनो शंकु अस्थिर–दोलायमान–रहे छे; अने
तेना पात्रोमां पदार्थ पडे छे तेम ते दंड अधऊर्ध्व जाय छे. ए
वृत्तान्त सर्व तोलकारने अनुभवसिद्ध छे.

ए दृष्टान्तनुं दार्ष्टान्त शिष्य तथा शास्त्र-गुरु छे. तोल-
यन्त्रना प्रथमभागस्थानीय शिष्य छे; अने द्वितीयभाग
तुलाधरस्थानीय शास्त्रगुरु छे. शंकुस्थानीय शिष्यनी
बुद्धि अने तुलाधरना द्विपक्ष स्थानीय शास्त्रगुरुनी उक्ति
ए भागत्रय एकता पामे–समधारण थाय, त्यारे शिष्यनुं
ज्ञान यथार्थ थयुं गणाय छे. शिष्यना अन्तःकरणमां शंका
समाधानरूप पदार्थो पडतां ते दोलायमान–कंपायमान–रहे
छे. अने ते काले शास्त्रगुरुरूप तुलाधरना द्विपक्ष अने
शिष्यबुद्धिरूप शंकु, ए भागत्रय भिन्न भिन्न जेवा देखाय
छे; परंतु सत्शास्त्रनुं तात्पर्य अने सद्गुरुनुं विवरण सदा सं-
बन्धवान् अने समान होय छे. शिष्यबुद्धिरूप शंकुना
आन्दोलनथी ए त्रयमां विषमता प्रतीता थाय छे. शिष्यना
अन्तःकरणमां संभवासंभव बलाबल फलाफलनी परीक्षा थइ
यथार्थ ज्ञानप्राप्ति थये, ते शिष्यनी बुद्धिरूप शंकु, शास्त्र–

---

[1] कांटानी सोयनी बे बाजुए चीपीआ जेवां बे पांखीआं रहे छे ते.

शास्तारूप तुलाधरना द्विपक्षसह, समतामां आवी स्थिर-शान्त-थइ रहे छे. ज्ञान यथार्थ थयानुं प्रत्यक्ष चिह्न ए छे. कारण आ संसारभ्रम, भ्रान्तिप्रत्ययनिमित्त ज छे, परमार्थथी तो नथी ज, एम सम्यक्‌दर्शनथी, अत्यंत ज उपरम थाय छे.

ए शास्त्र शास्ता अने शिष्यनी त्रिपुटीमां शास्त्र, प्रकाश तथा जल सम छे; शास्ता, वीज सम छे; अने शिष्य, पृथिवी सम छे. ए त्रिकमां शास्ता गुरुएकरी स्वोपदेश जातीय बोधद्रुम शिष्यरूप क्षेत्रमां समर्पित थाय छे. अथवा

गुरु.

आ दुःखमय तरणीय भवसागर तरवामां तार्य शिष्योने अर्थे तरि–नौका–रूप शास्त्र छे, अने तेना कर्णधार तारक शास्ता गुरु छे. अर्थात् तारक गुरुतंत्र सर्व छे, एथी गुरु श्रेष्ठ गणाय छे. तेथी संसारतारक स्वप्रकाशात्मस्वरूपसमर्पक श्रोत्रिय ब्रह्मनिष्ठ गुरु समीप श्रेयःसाधक शिष्यो विधिवत् जाय छे. अने तेवा गुरु परमकृपावते शाखाचन्द्रदर्शनवत्, वा सोपानारोहणवत्, स्थूलथी आरंभी सूक्ष्मने सूक्ष्मतरने बुद्धिविषय जणावी, तेथी अतिरिक्त सच्चिदानन्दस्वरूप उपदेशे छे. अथवा अध्यारोपापवादन्यायेकरी परमरहस्य ब्रह्मस्वरूप उपदेशे छे. अने ते शिष्य अधिकारी होय छे तो स्वाराज्यमां अभिषिञ्चाय छे.

"अध्यारोपापवादाभ्यां निष्प्रपंचं प्रपंच्यते ।
शिष्याणां बोधसिद्ध्यर्थं तत्त्वज्ञैः कल्पितः क्रमः"॥

'अध्यारोप[१] अने अपवाद[२] ए बेएकरी निष्प्रपंच परमात्मा प्रपंचाय (वर्णाय) छे. तत्त्वज्ञोए शिष्योना बोधनी सिद्धिसारू ए क्रम कल्पित छे.'

---

१. वस्तुमां अवस्तुनुं कथन. २. अधिष्ठान शेष.

असर्पभूता रज्जुविषे सर्पना आरोपवत्, वस्तुविषे अवस्तुनो आरोप ते **अध्यारोप** कथाय छे.

अध्यारोप.

सत्‌चित् आनन्द अनन्त अद्वय ब्रह्म ए **वस्तु**[1] छे, अने अज्ञानादि सकल जड समूह **अवस्तु** छे. ....

ए अवस्तु जडसमूह महाप्रपंच अने तदुपहित वस्तुचैतन्य ए बेथी, तप्तायसपिण्डवत्[2], अन्योन्यतादात्म्याध्यास थाय छे. ए अध्यारोप छे.

अनात्मा जड जे भास्य छे ते अवस्तु छे, अने तेनो भासक आत्मा चैतन्य छे ते वस्तु छे.

रज्जुना विवर्त सर्पनुं रज्जुमात्रत्ववत्, वस्तुना विवर्त अवस्तु अज्ञानादि प्रपंचनुं वस्तुमात्रत्व ते **अपवाद** कथाय छे. ए संग्रहवाक्यनुं विवरण आ छे. रज्जुस्वरूप परित्याग कऱ्या विना सर्पाकारे भासमान रज्जु, ए **विवर्त**. ए विवर्तनो अपवाद (बाध) नाम अधिष्ठान रज्जुमात्रताए करी अवस्थान; तत्सम चिद्‌वस्तुविवर्त जे अज्ञानादि प्रपंचनो अपवाद (बाध) नाम चिद्‌वस्तुमात्रताएकरी अवस्थान ए **अपवाद**. यथास्वरूपे करी अवस्थित वस्तुनो अन्यथाभाव द्विधा थाय छेः—परिणामभाव अने विवर्तभाव. यथार्थेथी स्वरूपने परित्यजीने स्वरूपान्तरनी प्राप्ति ते वस्तुनो परिणामभाव छे. जेम दुग्ध ज स्वरूपने परित्यजीने, दधिआकारे परिणमे छ तेम. स्वस्वरूपना परित्याग विना स्वरूपान्तरे मिथ्या प्रतीति, ते वस्तुनो विवर्तभाव छे; जेम रज्जु, स्वस्वरूपना अपरित्यागेकरी, सर्पाकारे मिथ्या प्रतिभासे छे तेम-

अपवाद अने विवर्त.

---

१. कालत्रय अनपायी–अबाध्य–आत्मा ए ज वस्तु शब्दनो अर्थ छे.
२. तपावेला लोखंडना गोळानी पेठे.

वेदान्तविषे ब्रह्ममां प्रपंचना भाननो परिणामभाव अंगीकार करातो नथी, कारण के दुग्धादिवत् ब्रह्मने विकारित्वना प्रसंगथी अनित्यत्वादि दोषनी आपत्ति थाय. (ब्रह्मना) विवर्तभावना अंगीकारमां ए दोष नथी. अधिष्ठानअवशेष ए ज कल्पितवस्तुनो (आत्यंतिक) नाश (बाध) छे. तेथी चिद्विवर्त प्रपंचनुं चिन्मात्र अवस्थान ए ज **अपवाद**[१].

एम प्रथम निष्प्रपंच आत्मवस्तुमां प्रपंचनो **अध्यारोप** (करी, पछी) कारण सूक्ष्म स्थूल प्रपंचान्त उत्पत्तिना वैपरीत्येकरी तेना तेना कारणरूपे अवस्थान (करवुं) ए ज **अपवाद**. अखंड ब्रह्मस्वरूप (वाणीनुं) अगोचर होवाथी (लक्षणा कर्या विना) विधिमुखेकरी उपदेशावाने अशक्य छे; तेथी अविद्याए अध्यारोपित मिथ्या नाना पदार्थना निषेधमुखेकरी, 'नेतिनेति' उपलक्षित अखण्ड चैतन्य ज उपदेशाय छे. कोइवार लक्षणाएकरी 'सत्यं ज्ञानमनन्तं ब्रह्म' एम विधिमुखे पण ब्रह्म उपदेशाय छे. विधिनिषेधादि सर्ववेदान्तवाक्योनुं साक्षात् वा परंपराएकरी अद्वितीय आत्मवस्तु प्रतिपादनमां

---

१. जेम रज्जुमां व्यावहारिक सर्पनो त्रैकालिक अभाव आप्तवाक्य, युक्ति ने ज्ञानथी जाणीने ते रज्जुरूपे अवस्थानरूप बाधमय अपवाद थाय छे, तेम ब्रह्ममां पारमार्थिक प्रपंचनो त्रैकालिक अभाव, श्रुति युक्ति ने अपरोक्षज्ञानथी जाणीने अधिष्ठानरूपे अवस्थानरूप बाधमय अपवाद थाय छे. पक्षांतरे उत्पत्तिना विपरीत क्रमे कार्यनुं कारणमां लय करी कारणरूपे अवस्थान ए स्थूलबुद्धिमान्ने लयचिंतनरूप ध्यान उपदेश्युं छे. ए मुख्य अपवाद नथी. ब्रह्ममां प्रपंचनो त्रैकालिक अत्यंताभाव ज्ञानथी पूर्वे सिद्ध छे, ते विषय (प्रकाश्य) रूप बाध छे. तथा तेनुं प्रकाशक वृत्तिज्ञान ते विषयी (प्रकाशक)-रूप बाध छे. तेमां ज्ञानरूप जन्यबाध शास्त्रीय (शास्त्रवाक्यजन्य), यौक्तिक (अनेकविधयुक्तिजन्य), अने अपरोक्ष (अधिष्ठानज्ञानजन्य) बाध ए भेदेकरी त्रण प्रकारनो छे. तेमां प्रथम द्वितीय परोक्ष बाध छे, अने तृतीय अपरोक्ष बाध छे. ए त्रिविध बाध **अपवाद** शब्दनो अर्थ छे.

ज तात्पर्य छे. अनात्मवस्तु प्रतिपादन करवामां वेदान्तवाक्योनो आदर नथी.

एम ईश्वरना अनुग्रहथी शास्त्रगुरुकृपाएकरी बोध थये अविद्याकल्पित अध्यारोपनो अपवाद थइ आत्मानुं परतत्त्व प्रकट थाय छे. ए प्रकारे प्रबुद्ध शिष्य कृतार्थ थाय छे. शंकर भगवान् वदे छे केः—

"स्वस्याविद्याबन्धसंबंधमोक्षात्
सत्यज्ञानानन्दरूपात्मलब्धौ ।
शास्त्रं युक्तिर्देशिकोक्तिः प्रमाणं
चान्तःसिद्धा स्वानुभूतिः प्रमाणं ॥"

'स्वनी अविद्याना बन्धना संबन्धना मोक्षथी सत्यज्ञान आनन्दरूप आत्मानी उपलब्धि विषये; शास्त्र, युक्ति, देशिकनी उक्ति नाम गुरुनां विवरण वचन, ए प्रमाण छे, अने अन्तःसिद्ध स्वानुभव प्रमाण छे.'

गुरुमहिमा.

शास्त्रप्रतिपादित सच्चिदानन्द ब्रह्मनो शिष्यने संबंधकरावनार गुरु छे, तेथी ब्रह्मसंबंधक गुरु श्रेष्ठ गणाय छे. जे गुरुनी कृपाथी शिष्यनी बुद्धिमां बोधरूप प्रकाश थइ, अविद्यारूप अन्धकारनो अभाव थइ जाय छे, अने ब्रह्म-आत्मानी एकतानी अवगतिएकरी अपार अखण्ड स्वानन्दसुखना वैभवनो आविर्भाव थाय छे. ते अनुपम ब्रह्मविद्याना प्रकाशक सद्गुरु, प्रकाश्य श्रेयोर्थी शिष्योने कृतकृत्य करीने स्वसदृश करे छे. एथी शंकरभगवान् तेवा गुरुने निरुपम गणी शतश्लोकीमां प्रथम ज प्रशंसे छे केः—

"दृष्टान्तो नैव दृष्टस्त्रिभुवनजठरे
सद्गुरोर्ज्ञानदातुः । स्पर्शश्चेत्तत्र कल्प्यः

स नयति यदहो स्वर्णतामश्मसारं ॥
न स्पर्शत्वं तथापि श्रितचरणयुगे
सद्गुरुः स्वीयशिष्ये । स्वीयं साम्यं विधत्ते
भवति निरुपमस्तेन वाऽलौकिकोपि ॥ १ ॥"

'त्रिभुवनना जठरमां ज्ञानदाता गुरुनुं दृष्टान्त नथी ज दीठुं, (अथवा अलौकिक दृष्टान्त पण नथी दीठुं;) तेमां कइंक समानताथी स्पर्शमणि दृष्टान्तरूपे कलपवा योग्य गणाय, पण ते घटे नहि. कारण के ते स्पर्शमणि लोहने सुवर्ण करे छे, तथापि स्वसदृश स्पर्शत्व पमाडी शकतो नथी. सद्गुरु तो चरणयुग आश्रित स्वशिष्यमां स्वसाम्य (पोताना समानपणुं) करे छे. ते कारणे करी स्पर्शादिनी उपमा योग्या न होवाथी गुरु निरुपम छे. वा अलौकिक पण छे.'

प्रक्रियाओ.

शिष्टसंप्रदायविद् महात्माओने संमत परमात्माना तत्त्वज्ञानना सिद्धान्तनो सारभूत पिण्डीकृत श्लोक आ छे.

"श्लोकार्धेन[1] प्रवक्ष्यामि यदुक्तं ग्रन्थकोटिभिः ।
ब्रह्म सत्यं जगन्मिथ्या जीवो ब्रह्मैव केवलं" ॥

(द्विहार)

सिद्धान्तसार.

'अर्धश्लोके ते वदु उक्त कोटि ग्रंथे ज,
ब्रह्म सत्य, मिथ्या जगत्, जीव ब्रह्म ज छे ज.'

मुख्यत्वे ए ब्रह्म जगत् जीव किंवा जीव-जगत्-परमात्मा ए त्रिवर्गमां ज सर्वनो अन्तर्भाव थाय छे. एथी श्रूयमाणा प्रक्रियाओमां प्रकारान्तरे नाना विचारो आवे तेना तात्पर्यार्थना निर्णयसारू तेनुं वर्गीकरण तदनुसार करवा लक्ष राखवुं. भेदमां भय छे, अभेदमां-ऐक्यमां ज आनन्द-सुख छे. व्यवहारमां

१. "अर्धश्लोकेन व०" एम पण पाठांतर छे.

अने परमार्थमां ए सिद्धान्त समान प्रवर्त्ते छे. भेदप्रमाणे भय, एकता प्रमाणे आनन्द. अभ्युदयार्थी अने श्रेयोर्थी उभयने एकतानो विस्तर वधे ज स्वार्थनी सिद्धि छे. ए तत्त्वज्ञाननुं फलित स्वारस्य छे. भेदनो धिक्कार अने अभेदनो सत्कार तथा स्वीकार ए ज कर्तव्य छे. अविद्या प्रक्षीयमाणा थये अने विद्या उद्भूता थये आत्मानो परिच्छिन्न भाव जइ सर्वात्मभाव थाय छे. अखिल एकता—ब्रह्मआत्मानी एकता—ए ज सर्वात्मभाव छे.

उत्तम अधिकारी प्रति सदात्मैकत्वनिर्णयपरताएकरी परमार्थ तत्त्वोपदेश ज प्रधान छे. आत्मज्ञानथी अन्यत् निरतिशयश्रेयःसाधन छे नहि. यद्यपि गुरुसंप्रदायरहित, अश्रुतवेदान्त, अत्यंतवहिर्विषयासक्तबुद्धि, सम्यक् प्रमाणोमां अकृत-श्रम एवा अविवेकीओने, अविद्याकल्पित नामरूप विशेषआकारेकरी अपहृतबुद्धिथी, आत्मभूत परमात्मा ब्रह्म,—अत्यन्त प्रसिद्ध सुविज्ञेय आसन्नतर[1] सते पण, अप्रसिद्ध दुर्विज्ञेय अतिदूर अन्यत् जेवो,—भासे छे; तथापि एओथी विपरीत जे विवेकीओ ते विवेकीओने, आत्मचैतन्य विना वस्तु-अन्तरनी अनुपलब्धिथी, लौकिकग्राह्यग्राहकद्वैतवस्तुमां सद्बुद्धि नितरां दुःसंपाद्या छे. तेवा बाह्याकार-निवृत्तबुद्धिमान् लब्ध-गुरु-आत्म-प्रसाद पुरुषने अतःपर (परमात्माथी पर) सुख, सुप्रसिद्ध, सुविज्ञेय, स्वासन्न[2] छे नहि.

तेवा आत्मेश्वरैकत्वदर्शनलक्षण ज्ञानमां स्थित ज्ञाननिष्ठ पुरुषने अविद्याए अध्यारोपित नामरूपादि अनात्मानी निवृत्ति तथा आत्मचैतन्य विज्ञाननुं दर्शन सतत विद्यमान छे. ए ब्रह्मनुं सर्वात्मदर्शन कइंक आ प्रकारे छेः—

---

१. अधिकसमीप, वधारेपासे. २. बहुसमीप, बहुपासे.

"अस्ति भाति प्रियं रूपं नाम चेत्यंशपञ्चकं ।
आद्यं त्रयं ब्रह्मरूपं जगद्रूपं ततो द्वयं" ॥ २० ॥

दृग्दृश्यविवेक किंवा वाक्यसुधा.

पंचांशक जगत्.

आ जीव जगत् परमात्मा, 'अस्ति' नाम छे, 'भाति' नाम प्रकाशे छे—जणाय छे, 'प्रिय' नाम प्रेमास्पद[1] छे; तेओनुं अमुक 'रूप' छे अने अमुक 'नाम' छे. ए पंचअंश मळीने लोकव्यवहार गोचर भूतभौतिकात्मक समस्त वस्तु प्रतीत थाय छे. ए पंचांश विना व्यवहारनो असंभव छे. ए सर्वमां 'आद्यत्रय' नाम, अस्ति-भाति-प्रियअंश, किंवा, सत्-।चेत्-आनन्दात्मक अंशत्रय छे ते, ब्रह्मनुं स्वरूप छे; अने सच्चिदानन्दात्मक अंशत्रयथी उपरितन 'नामरूपात्मक' अंशद्वय छे ते, जगत्-माया[2]-रूप छे.'

जगत्नी त्रिधा प्रतीति

ते जगत्रूप कार्यथी अनुमेया, अन्य सामग्री अनपेक्षित अन्यस्वरूपप्रदर्शना मायाना अंशनुं नाम-रूपकर्माख्य जगत् तेनी प्रतीति त्रिधा छे. १ लौकिकी, २ शास्त्रीया, ३ आनुभविकी. तेओनी निवृत्ति, क्रमथी, वेदान्तज्ञानना श्रवण मनन-निदिध्यासने करी, आत्मसाक्षात्कारे करी, अने प्रारब्धक्षये करी थाय छे, अन्य प्रकारे थाय नाहि. एम थये केवल परमात्मा ज जेम छे तेम प्रकाशे छे. अथवा अज्ञानदशामां पूर्वे अनुभूत प्रपंचगत पारमार्थिक **सत्यत्व**नी दृष्टि, ते सत्यत्वदृष्टि अद्वैत-शास्त्रना श्रवणजन्य ज्ञाने करी नाशे छे; ते पछी व्यवहारक्षमत्वे करी प्रपंचनुं **व्यावहारिकत्व** प्रतीत थाय छे, ते व्यावहारिकत्व, श्रवणना मननथी प्रादुर्भूत परोक्षविज्ञानेकरी नाशे

---

१. प्रेम—स्नेहनुं प्रतिष्ठित स्थान. २. विचित्रकार्यजनकत्व आकार छे जेनो एवी माया.

छे; ते पछी प्रतीतिकालस्थायित्वे करी जगत्नुं **प्रातिभासिकत्व** स्फुरे छे, ते प्रातिभासिकत्व, निदिध्यासनथी प्रादुर्भूत **सम्यक्ज्ञाने** करी प्रारब्धादि कर्मत्रयना नाशे करी विनाशे छे. एम त्रिधा आत्ममाया नाशे छे. अने ब्रह्मात्मत्वनुं ज्ञान थाय छे. ए आत्मज्ञान किंवा तत्त्वज्ञान समकाल ज विद्वान् मुक्त थाय छे.

आत्मानात्मविवेक नामे प्रकरण ग्रंथमां शंकरभगवान् आत्मा-अनात्मानुं लक्षण आ प्रकारे वर्णे छेः—

"दृश्यं सर्वमनात्मा स्याद्दृगेवात्मा विवेकिनः
आत्मानात्मविवेकोऽयं कथ्यते ग्रंथकोटिभिः॥"

'विवेकीने दृश्य सर्व अनात्मा थाय, दृक्—द्रष्टा—ज आत्मा थाय. आत्मा अनात्मानो ए विवेक ग्रंथनां कोटिओएकरी थाय छे.'

दृक्-दृश्य.

आत्मा नाम स्थूल-सूक्ष्म—कारण—शरीर त्रयथी विलक्षण, पंचकोशथी व्यतिरिक्त, अवस्था त्रयनो (जाग्रत्-स्वप्न-सुषुप्ति एओनो) साक्षी, सच्चिदानंदस्वरूप. '**सत्**' स्वरूप नाम कोइथी पण अबाध्यमानत्वे करी कालत्रयमां पण एकरूपे विद्यमान वस्तु. '**चित्**' स्वरूप नाम साधनान्तर निरपेक्षताएकरी स्वयंप्रकाशमान होइ, स्वमां आरोपितसर्वपदार्थअवभासक वस्तु. '**आनन्द**' स्वरूप नाम नित्यनिरतिशयपरमप्रेमास्पद.

ए आत्मा द्विविध छे; ईश्वर अने जीव. तेमां शुद्ध अशुद्ध भेदथी ए बे—ईश्वर अने जीव—पण द्विविध छे. तेओमां माया-उपाधित्वे करी अशुद्ध ईश्वर, अने अविद्या-उपाधित्वे करी अशुद्ध जीव, भेद व्यवहारना हेतु छे. उपाधित्वरहित शुद्ध ईश्वर अने शुद्ध जीव अभेद व्यवहारना हेतु छे. तेओमां देहत्रयविशिष्ट अशुद्ध जीव ए अपकृष्ट छे; अने माया अने

मायानां कार्य एथी वस्तुतः शून्य परंतु एओनो आश्रयभूत होवाथी सर्वनुं कारण जे ईश्वर ए सर्वोत्कृष्ट छे.

अनात्मा नाम अनृत–जड–दुःखात्मक समष्टिव्यष्टि-आत्मक स्थूल-सूक्ष्म-कारण-शरीरत्रय. तेमां **अनृत** नाम काल-त्रय-विषे अविद्यमान वस्तु. **जड** नाम स्वविषय परविषय ज्ञानरहित वस्तु. **दुःख** नाम अप्रीतिरूप वस्तु.

ए चित्-जडरूप वैलक्षण्यथी, प्रकाश अने तम सम वि-भक्त 'आत्मा' अने 'अनात्मा' ए उभयनो अविवेक ए ज प्राणीने बंधनुं कारण छे. अने ए आत्मा अनात्मा एओनो विवेक ए मोक्षनुं कारण छे.

अनन्यलभ्य वेदान्तनो विषय–अद्वितीय ब्रह्मात्मत्व–तेना ज्ञानथी परम पुरुषार्थ जे सर्वात्मभावनी अभिव्यक्ति, ए रूप साक्षात् फल थाय छे.

स्थूल-लिंग–देहथी व्यतिरिक्त मुख्यात्मा–पुरुष–चिद्रूप-साक्षी, ते मुख्यात्मामां ज जगत्कारण परमात्माने,[1] वेदान्तम-हावाक्योद्वारा, देखे छे········परमात्मा ज सर्व जगत्नुं उपा-दान छे, उपादान विना कार्यरूप कंई वस्तु छे ज नहि. जेम मृत्सुवर्णादि विना घटकुंडलादि वस्तुनुं अदर्शन छे–वस्तु छे ज नहि–तेम. एथी जगत्कारण परमात्माने स्वात्मत्वे करी देखतां सर्व जगत्ने पण स्वात्मत्वे करीने ज (विद्वान्) देखे छे. एम मुख्यात्माना स्वात्माना–ईश्वरत्वने अने अशेष जगत्रूपत्वने उपनिषदो प्रतिपादन करे छे.

---

१ '(मुख्य) आत्मामां ज (परम) आत्माने देखे छे,' एम आधार-आधेय-भेद प्रतीत थाय छे, ए,–राहुनुं शिर–एनी पेठे, एक ज वस्तुमां औपचारिक छे. जीवात्माने ज परमात्मत्वे करी, वेदान्तमहावाक्योए (साक्षी) देखे छे एम अर्थ छे.

एवा अद्वितीयत्वना बोधथी पश्चात् अविद्या निवर्ते छे. एम थये राहुथी (पृथिवीनी छायाथी) विमुक्त चंद्रमा उज्ज्वल भासे छे, तेम आच्छादिका अविद्याथी बोधे करी विमुक्त आत्मा सच्चिदानंदस्वरूप भासे छे, अने तेना अद्वितीयत्वनो तथा आनन्दैकरसत्वनो आविर्भाव थाय छे.

पदार्थना परिशोधनमां प्रसिद्धना अनुवादे करी अप्रसिद्ध निरूपणीय छे—एवो न्याय छे. जीवमांना आत्मा-अनात्मानास्वरूप विषये विवेक थये, जगत्मांना आत्माअनात्मा—स्वरूपनुं, किंवा चैतन्यईश्वरना स्वरूपनुं अने जडप्रकृतिना स्वरूपनुं ज्ञान सुलभ थाय छे. तेथी आत्मज्ञान ज परमपुरुषार्थीओए प्रथम साधवा योग्य छे.

स्वानुभवथी सर्वानुभवअर्थ प्रथम आत्मानु-'अहं'नुं—'हुं'नुं-ज्ञान.

आ जगत्मांना गत तेम ज विद्यमान तत्त्ववेत्ताओनां मतनो अन्त कइंक आ प्रकारनी एकाग्रतामां आवतो प्रतीत थाय छे. प्रसिद्ध एकदेश सुसाध्य स्व-आत्मा-अस्मत्-विषये यथार्थ जाणेथी अप्रसिद्ध अशेष विश्व-युष्मत्—विषये अनुमानादिथी जाणवुं सुतर—सुलभ थाय छे. अर्थात् पिण्डविषये यथार्थ जाण्याथी ब्रह्माण्डविषये जाणवुं, किंवा व्यष्टिविषये जाण्याथी समष्टिविषये जाणवुं ए संभवित कोटिमां आवे छे. तेथी प्रामाणिक पुरुषो ज्ञानसिद्धिअर्थ सारासार विचारना क्रमनो प्रचार आ प्रमाणे राखे छेः—अने जेम प्रकाश विना घटादि पदार्थोनुं भान थतुं नथी तेम विचार विना केवल कर्म-उपासनलक्षण साधनोए करी ज्ञान उत्पन्न थतुं नथी, ए तो प्रसिद्ध छे.

"कोऽहं कथमिदं जातं को वै कर्त्ताऽस्य विद्यते ।
उपादानं किमस्तीह विचारः सोऽयमीदृशः" ॥१२

अपरोक्षानुभूतिः.

विविधविचार क्रम.

ते विवेकविचारनो आ क्रम छे. कर्ता भोक्ता सुखी दुःखी इत्यादि व्यवह्रियमाण व्यवहारनो वहनकर्त्ता–व्यवहारनुं मूल–अहम्[1] (हुं) ते कोण–शुं स्वरूप? ए प्रथम विचार छे. अर्थात् स्वस्वरूप प्रथम यथावत् जाणवुं, ए ज आदिकर्तव्य छे. ते स्वस्वरूप, अज्ञान दशामां, कर्ता भोक्तादि लक्षणवालुं प्रतीत थाय छे एवुं ज छे किंवा तेथी विलक्षण छे. एनो अनेक प्रमाणोए करी निर्णय कर्त्तव्य छे. ए विषये विचार ए ज 'आत्मविचार' छे.

पश्चात् आ स्थावरजंगमात्मक जगत् क्यांथी 'जात' नाम जायुं छे. जगत्नुं अधिष्टान शुं छे? तथा आ जगत्नो कर्त्ता (उत्पादक) कोण छे? जीवोनां अदृष्ट, किंवा ईश्वर, किंवा अन्यत् कइं. आ जगत्विषये उपादान शुं छे? ए विषये विचार ए ज ज्ञानप्रकाशक विचार छे.

आत्मविचार करतां स्पष्ट थाय छे के:–अज्ञानरूप अधिष्टानथी–उत्पत्तिस्थानथी–जात (थएलुं) अने जेनो कर्त्ता संकल्प छे, एवो आ नामरूपात्मक अज्ञानप्रभव सर्व दृश्य जडवर्ग–देह इंद्रिय संघातथी ते ब्रह्माण्ड सुधी–छे ते आत्मा हुं नथी किन्तु एओथी विलक्षण सर्वविक्रियारहित आत्मा छे.

---

१. 'अहम्' शब्दसंबंधमां आवी कल्पना छे. अ आदि (१६) स्वर, तथा क थी ह सुधीना (३३) व्यंजन मळी कुल (४९) वर्ण छे. ते अ थी ह पर्यंतनो प्रत्याहार जेमां सर्व वर्णो—अक्षरो–आवी जवाथी समस्त नामो अने रूपो पण आवी गयां गणाय छे, ते ज कारणथी ज ते 'जीव' शब्दनो वाचक छे. सर्वदृश्यवर्ग जीवभावने अवलम्बीने ज छे, तेनुं प्रथम स्फुरण 'अहं' छे. ए 'अहं' संज्ञा थयानुं कारण ए ज छे के, ते 'अहं' प्रत्याहारमां समस्त नामरूप अन्तर्गत थाय. वाणीनुं साधन सर्ववर्णोनो प्रत्याहार 'अह' ए कंठस्थानथी उद्भवी तेनो ओष्टस्थान 'म्' कारमां अंत आवी 'अहम्' शब्द थाय छे. ते सूचवे छे के सर्व वाच्यनो आरंभ अने अंत 'अहम्' मां ज छे.

मनुष्यमात्रमां प्रथम 'अहं' बुद्धि समाना—एका—ज होवाथी अनेक जलपात्रोमां एक ज सूर्यवत् सजातीयविजातीयभेदरहित एक ज, सर्वनो प्रकाशक, ज्ञाता, साक्षी, अहंप्रत्ययवेद्य एवो आत्मा छे, ते सत्यज्ञानआनंदअद्वयादिलक्षण ब्रह्म ज छे. ए जीव—ब्रह्मनुं किंवा आत्मा-परमात्मानुं ऐक्य, ज्ञाने करी देहात्मभाव दूर थइ अज्ञाननो प्रविलय थते, अनुभवसिद्ध थाय छे. ते आत्मविचार अनेक प्रकारे कराय छे.

"पञ्चानामपि कोशानामपवादे विभात्ययंशुद्धः ।
नित्यानन्दैकरसः प्रत्यग्रूपः परं स्वयं ज्योतिः॥१५३
आत्मानात्मविवेकः कर्त्तव्यो बन्धमुक्तये विदुषा ।
तेनैवानन्दी भवति स्वं विज्ञाय सच्चिदानन्दम्"१५४

शंकरविरचित विवेकचूडामणि.

(जेम वापीस्थ जल ते वापीमांथी ज उत्पन्न थएला शैवालपटलोए[1] करी ढंकाय छे, एथी पोते—जल जणातुं नथी; ते शैवालने दूर करे सते तृष्णा-संतापहर पुरुषने सद्यः सौख्यप्रद परमशुद्ध सारूं जल प्रतीत थाय छे; तेम आत्मानो उपाधि स्वशक्ति जे अपराप्रकृति माया तेमांथी उत्पन्न थएला अन्नमयादि पंचकोशोए करी आत्मा आवृत थयो छे ते सम्यक् भासतो नथी.) ते पंचकोशोनो पण अपवाद[2] थये आ (आत्मा) नित्यानन्दैकरस स्वयंज्योतिः प्रत्यक्रूप परमशुद्ध विभासे छे—स्पष्ट प्रतीत थाय छे. विद्वाने बंधथी मुक्ति सारू आत्मा-अनात्मानो विवेक कर्त्तव्य छे. तेणेकरीने ज स्वरूपने सच्चिदानन्द जाणीने (विद्वान्) आनंदी थाय छे.

"देहोऽहमित्येव जडस्य बुद्धि-
र्देहे च जीवे विदुषस्त्वहंधीः ।

---

१. लीलना पडदा, ढांकणां. २. अधिष्ठानशेष.

विवेकविज्ञानवतो महात्मनो
ब्रह्माहमित्येव मतिः सदात्मनि" ॥ १६३ ॥

शंकर–विवेकचूडामणि.

'देह हुं' एम ज जडनी (अज्ञानीनी) बुद्धि होय छे; विद्वाननी 'अहं' बुद्धि तो देहमां अने जीवमां होय छे; अने विवेकविज्ञानवान् महात्मानी ब्रह्माहं (ब्रह्म हुं) एम ज मति सदात्मामां होय छे.'

अधिकारानुसार आत्मदर्शन.

अग्निहोत्रादि यजनमां अरणिना मन्थनेकरी अग्निनुं उत्थापन करे छे. तेमां प्रथम अरणिनां बे काष्ठ मात्र होय छे. तेओनुं यथाविधि संघर्षण कराय छे. तेथी तेमां अग्निनुं उत्पादन थाय छे, अने ते उत्पन्न अग्नि ते अरणिने अन्ते स्वस्वरूप–अग्निस्वरूप–करे छे. प्रथम जे अरणिविषे काष्ठनो अने तिरोहित अग्निनो अभेद होइ, ते अरणि काष्ठरूपा मात्र प्रतीता थती हती, तेमां तिरोहित सामान्य अग्नि हतो, ते संघर्षणादिए करी प्रकट थतां ते ज अरणिमां काष्ठ अने अग्नि उभय भाग प्रतीत थइ भेद प्रतीत थवा माडे छे. अने अन्ते ते न्यूनसत्ताक काष्ठभागनो अधिकसत्ताक अग्निसह अभेद थइ ए ज अरणि अग्निरूपा प्रतीता थाय छे.

ए दृष्टान्तसदृश स्वसंबंधमां–अहंकारादि देहान्तवर्गना नियन्ता आत्मा संबन्धमां,–अज्ञानीनी, विवेकीनी, अने ज्ञानीनी, बुद्धिने भिन्ना प्रतीति थाय छे. सर्व प्राणीओ जडचेतनमय छे; तेमांथी अज्ञानीओने देहमां ज आत्मबुद्धि होय छे. जेम अरणि प्रथम काष्ठरूप देखाय छे तेम आत्मा, अज्ञानीओने देहरूप प्रतीत थाय छे. अर्थात् जड चेतननो अभेद प्रथम जड देहरूपे ज प्रतीत थाय छे. ए अज्ञानजन्य अभेदने दूर करवा कल्पितभेदरूप विवेक कर्त्तव्य

छे. ते विवेकथी, जेम संघर्षणथी अरणिमां अग्नि प्रकटित थइ काष्ठ तथा अग्नि बे देखाय छे तेम, आत्मामां जड चेतन बे भाग जणाय छे. अर्थात् जडदेह तथा चेतनआत्मा एवो भेद विवेकथी विद्वानोने आत्मामां जणाय छे. ए भिन्नसत्ताक जडचेतनमांथी न्यूनसत्ताक जड पदार्थनो बाध थइ, अधिकसत्ताक चेतननुं अवशेष रहेवुं ए 'बाधकृत अभेद' छे. अने ते ज वास्तविक **अभेद** ए तत्त्वज्ञान छे. अवे ज्यारे विवेकविज्ञानथी यथार्थ ज्ञान थाय छे त्यारे ते ज्ञानी महात्माने, जेम अरणि अन्ते केवल अग्निरूपा प्रतीता थाय छे तेम, **आत्मा** चेतनरूप-ब्रह्मरूप-प्रतीत थाय छे. अर्थात् तत्त्वदर्शी पुरुष, सर्व उपाधिना बाधपूर्वक, जीवने शिवरूप, आत्माने परमात्मारूप,—आत्मा परमात्मानो अभेद—देखे छे. प्रतिबंधक उपाधिए करी तत्त्वनुं तिरोधान होय छे. ते उपाधिनो बाध थये आत्मतत्त्व प्रकटे छे.

अभ्यासथी कालनो पाक थतां आत्मदर्शन.

रासायनिको प्रयोगथी सिद्ध करे छे के,—अंगारमां (कोयलामां) हीरारत्ननुं तत्त्व छे. अंगारनो मलिन उपाधि दूर थइ तत्त्वभाग अवशेष रहे ए अंगारनुं तत्त्व, ते, हीरारत्न ज छे. तेम 'पापोहमस्मि' एवा जीवभावनो अहंकारादि देहान्त उपाधि, विवेक विज्ञानद्वारा दूर थये, ते जीवनुं अधिष्ठान मूलतत्त्व अवशेष रहे ते शोधित **जीव**. ए **शिव**—जीवात्मां ए परमात्मा—ए ज छे. अने ते निरुपाधिका ब्रह्मनिष्ठामां 'अहं ब्रह्मास्मि' एवुं जीवनुं स्वरूप रहे छे; एटलुं ज नहि किन्तु सर्वानर्थबीजभूता अविद्या अपकृष्यमाणा, अने विद्या उत्कृष्यमाणा थये, सर्वात्मभाव-सर्वात्मैक्यभाव-प्रकटित थाय छे. ज्ञान उत्पन्न थये परमार्थ तत्त्व ज्ञात थाय छे, अने परमार्थ

तत्त्व ज्ञात थये सर्व द्वैतनो उपशम थाय छे; अने तेम थये अद्वैत सिद्ध छे. द्वैतनो बाध थइ अद्वैतनुं—ब्रह्मैकत्वनुं—दर्शन ए ज मोक्ष छे. परंतु ए परमगतिनी प्राप्ति बहु जन्मोना अन्ते सुदुर्लभ ज्ञानवान् महात्माने ज थाय छे.

"बहूनां जन्मनामन्ते ज्ञानवान्मां प्रपद्यते"।

भ० गी० अ० ७।१९॥

ए परमपुरुषार्थप्रद ब्रह्मात्मैकत्वनी प्राप्ति एम दुर्लभ छे. तेनुं साक्षात्साधन अविद्यानिवर्तक ज्ञान छे. ते उत्पाद्यमान ज्ञान तत्विपरीत अज्ञानने, प्रकाश तमवत्, अवश्य बाधे छे. ते ज्ञानसारु, तत्पद ब्रह्म अने त्वंपद आत्मा एओनो वाक्यार्थ जे ब्रह्मात्मैकत्व तेनो वारंवार विचार कर्तव्य छे. ते विचारना परिपाकने अन्ते ज्ञानद्वारा निःश्रेयस प्राप्त थाय छे. परंतु ए सर्वोत्तम महत्फलना लाभार्थे सधैर्य प्रयत्न पण तेवो ज भगीरथवत् कर्तव्य छे. पंचदशीकार विद्यारण्य मुनि वदे छे केः—

"कालेन परिपच्यन्ते कृषिगर्भादयो[1] यथा।
तद्वदात्मविचारोऽपि शनैः कालेन पच्यते" ॥३७॥

'जेम कृषि (खेती) गर्भआदि काले करी पाके छे—फलप्रद थाय छे—तेम आत्मविचार पण धीरे धीरे काले करी पाके छे—ज्ञानरूप फलप्रद थाय छे. जे शास्त्रज्ञानथी ज्ञातपदार्थ—सच्चिदानन्दस्वरूप ब्रह्मात्मैकता—तेनुं, तथैव—ते ज प्रमाणे,—स्वानुभवकरण ते **विज्ञान** वदाय छे.

सच्चिदानन्दविषे संस्था संबंधमां अतिशय धैर्यनी तथा अभ्यासनी अपेक्षा छे. जे नित्य फलप्रद छे, तेने फलदाननो अवसर आवतां विलंब थाय छे. अमुक समय सुधी तेनां फल गर्भमां रही पछी ते व्यक्त, वर्धमान, परिपक्व, अने

१. 'दर्भा' एवुं पाठांतर छे.

सुस्वादु, उपयोगि, अने सिद्धिप्रद थाय छे. विशेषे करी मालती चंपकादि उत्तम पुष्पराज तथा आम्रादि उत्तम फलराज संबंधमां ए नियम अस्खलित प्रवर्ते छे. आम्रफलना बीजमां, अंकुरमां, स्कंधमां, शाखामां, पत्रमां, पुष्पमां अने फलमां पण–, जे परिपक्क आम्रफलमां सुस्वाद होय छे ते–सुस्वाद अभिव्यक्त थतो नथी. जेणे अतिसुस्वादु आम्रफलनो स्वाद लीधो नथी, एवा कोइ अज्ञ प्रति परम कारुणिक आप्तजन आम्र फलनी उत्कृष्टतानुं निरूपण करी तेना द्रुमनुं बीज आपीने तेमांथी फल उत्पन्न करवानो विधि कह्यो, तेना अनुपम फलथी थता निरुपम लाभनी तथा ते द्रुमनी छाया शीतलतादिथी थता अनेक लाभनी प्रशंसा करे, ते सांभळी ते अज्ञ ते बीजने रोपी, पछी तेना अंकुरादिथी फलपर्यन्त उत्तरोत्तर स्थितिमां ते आप्तनिरूपित परिपक्क फलनो स्वाद चाखवानी आशा राखे तो ते परिपूर्ण थाय नहि. ए अनुत्तम फलनो सुस्वाद, ते फलनी परिपाकदशामां ज आवे छे. ते संपूर्णपक्कतापर्यन्त ते द्रुमनी यथाविधि सेवा करवी ज जोइए; अने धैर्य राखवुं ज जोइए. तेम थये ए अनुपम फलनी प्राप्ति अने भोग थाय छे. अन्नादिसंबंधमां पण तेओनो पाक थये कइंक अपर ज स्वाद थाय छे. ए दृष्टान्तानुसार तत्त्वज्ञान संबंधमां छे. पुरुषकारेकरी तेनी प्राप्तिनां साधनोनो सद्भाव करवो अने तेनी प्राप्तिनां बाधनोनो अभाव करवो ए प्रथम कर्तव्य छे. पछी कोइ आप्त महात्माथी तेनो विधि यथार्थ समजवो जोइए. अने पश्चात् तदनुसार अनुष्ठान कर्तव्य छे. ए सर्व कृत्य समाप्त थये फलसिद्धि थाय छे. तेमां प्रमादरहितता, बहु धैर्य, सदाग्रह, सदभ्यासादिनी अपेक्षा

परिपाकमां सुस्वाद.

छे. तेवा यथोक्तकारी भगीरथप्रयत्नवान्ने अज्ञान निवृत्त थये तत्त्वज्ञाननी प्राप्ति थाय छे, ते समये ज आत्यन्तिक सुखरूप अनुत्तम फलना सुगंधसुस्वादनो आविर्भाव थाय छे; अने ज्ञाननिष्ठा थये स्वरूपमां अवस्थान थइ—मनवाणीने अप्राप्य एवा—स्वाराज्यसाम्राज्यना अलौकिक नित्य सुखमय थवाय छे.

सर्वत्र सच्चिदानंददर्शन.

बुद्धिमान् श्रेयःसाधकोए, कपोलकल्पित काले फलसिद्धि न थये, कर्तव्यमां प्रमाद तथा अनास्था करवां नहि. ए हितकारक तथा फलसाधक छे. धैर्य राखी जे सद्भागी जन फलप्राप्तिपर्यन्त प्रमादरहित प्रवर्धमान वर्ते छे तेने सदाप्राप्त सच्चिदानंदस्वरूप ब्रह्मभावनी प्राप्ति थाय छे ए निःसन्देह छे. जेम प्राणिपदार्थोना रूपमात्रनुं ग्रहण केवल चक्षु ज करी शके छे, तेम आ विश्वना सत्यस्वरूप सच्चिदानंदमात्रनुं ग्रहण केवल प्रबुद्ध ज करी शके छे. चक्षु जेम सर्वत्र रूपमात्र ज देखे छे तेम प्रबुद्ध सर्वत्र सच्चिदानन्द ज अनुभवे छे.

"सत्यज्ञानानन्दं प्रकृतं परमात्मरूपमद्वैतम् ।
अवबोधयन्ति निखिलाः श्रुतयः स्मृतिभिः समं समस्ताभिः" ॥

शंकरविरचित स्वात्मनिरूपण. ६५.

दृश्य प्रपंचना विलापनेकरी द्वैतरहित सच्चिदानन्दस्वरूप परमात्मरूप एक ब्रह्म ज अवशिष्ट रहे छे, ते ज्ञेय स्वरूपने ज समस्त स्मृतिओ सहित निखिल श्रुतिओ बोधे छे—प्रतिपादे छे.

सच्चिदानन्द परमात्मा ज आ दृश्य जगत् विवर्तरूपे भासे छे. आ दृश्यमान सर्व जगत् ब्रह्म ज छे एम परमहितैषिणी

श्रुति, श्रवणमननादिएकरी परिपक्कमनना सुकृती पुरुषवरोने बोधे छे. अने ते ज सत्य छे. कारण विद्वानोनो अनुभव पण आवो ज छे केः—'सर्वात्मक सच्चिदानन्द ब्रह्म ज एक अद्वितीय छे, किञ्चित् अन्य नथी ज'. ए भगवती श्रुतिनां महावाक्योना पश्चात् अने विद्वद्अनुभूतिनी पूर्वे, मध्यमां युक्तिओनी अपेक्षा छे, तेओनी संपूर्ति सकलसन्देहनाशक परमदयालु गुरु करे छे.

[illegible]तियुक्तिअनुभूतिएकरी जगत्जीवपरमात्माना भेदना [illegible]क ज्ञानमां असंख्य युक्तिओ छे. तेमांथी, सर्वत्र सर्वात्मक ओतप्रोत सच्चिदानन्द ब्रह्मस्वरूप छे तेनी अनुभूतिना प्रदर्शनसारू, एक आ प्रकार पण छेः—

जगत्-जीव किंवा समष्टि-व्यष्टि एओमांना असंख्य पदार्थो असंख्य नामरूपना होय छे. परंतु ते सर्वेमां अनुगत जे 'सत्ता' एटले 'छेपणुं'; 'स्फुरता' एटले 'जणावापणुं-भान-चलनवलनसामर्थ्य'; अने 'प्रियता' एटले, 'सुखसाधनतानुं भान थये जेनो संग्रह करवानो प्रीतिभाव थाय छे ते'; ए सर्वे, अधिष्ठान परमात्माना सत्-चित्-आनन्द स्वरूपना ज प्रतापी अंशोथी छे. ए पदार्थोमांथी परमात्मानां सत्ता-भाननो वियोग थये ते पदार्थोनुं छेपणुं तथा भान जाय छे तो प्रीति तो क्यांथी ज रहे. एथी सिद्ध छे के पदार्थोनो आत्मा, सर्वात्मक भूमा—ब्रह्म—ज छे.

प्रकृतिनुं परिणाम जे जगत्, तेना तमोगुणप्रधान स्वतन्त्र-चलन—वलनशून्य अखिल अचेतन मृत्तिका काष्ठादि पदार्थोमां सच्चिदानंदस्वरूपमांना 'सत्ता' रूपनो ज आविर्भाव प्रतीत थाय छे. जगत्ना रजोगुणप्रधान चलनवलनसमर्थ अखिल जडउपाधिसंयुक्त प्राणी आदि चेतन पदार्थोमां सच्चि-

दानन्दस्वरूपमांनां 'सत्ता–स्फुरता' ए द्विरूपनो आविर्भाव थाय छे. अने ते ज जडउपाधिसंयुक्त चेतन प्राणिपदार्थोनो आनन्दप्रतिबंधक उपाधि, कोइ पण निमित्तथी दूर थाय छे त्यारे, ते प्राणिपदार्थरूप जगत् सत्त्वगुणप्रधान थाय छे; अने तेओमां 'सत्ता-स्फुरता-प्रियता' ए पूर्ण त्रिरूपनो आविर्भाव थाय छे. ए प्रकारे जगत्–किंवा समष्टि–संबंधमां छे.

जीव किंवा व्यष्टि संबंधमां आ प्रकारे छेः–

जीवमां (देहीमां) जड-चेतन, किंवा प्रकृति-पुरुष, अनात्माआत्मा उभय प्रतीत थाय छे. तेमां आत्मभाग छे ए तो सदा सच्चिदानन्दस्वरूप ज छे. अनात्मभाग देहादि–जे अविद्यानुं परिणाम छे–ते देहादिमां आत्माने अविद्याना सत्त्वरजस्तमोगुणो बांधे छे. बाह्यान्तर्ना कोइ निमित्तकारणथी तमोगुण प्रवर्ते छे, त्यारे ते अन्तःकरणविशिष्ट जीवना ज्ञानने आवरण थइ ते जीव प्रमादी, आलसु, मूढ, थाय छे; तेमां सच्चिदानन्दस्वरूप आत्माना 'सत्ता'रूपनो ज आविर्भाव प्रतीत थाय छेः रजोगुण प्रवर्त्ते छे, त्यारे जीवने तृष्णा अने आसंग थइ, ते जीव प्रवृत्तिमान्, लोभी, कर्मी दुःखी थाय छे; तेमां सच्चिदानन्दस्वरूप आत्माना 'सत्तास्फुरता' ए द्विरूपनो आविर्भाव थाय छे. तमोगुणवती तथा रजोगुणवती वृत्तिने आसुरी वृत्ति कहे छे; अने सत्वगुणवती वृत्तिने दैवी वृत्ति कहे छे. अने सत्वगुण प्रवर्त्ते छे त्यारे जीव प्रकाशक अने निरुपद्रव थइ निवृत्तिमान्, ज्ञानी, सुखी, थाय छे; अने तेमां सच्चिदान्दस्वरूप आत्माना 'सत्ता स्फुरता प्रियता' किंवा सच्चिदानन्द ए त्रिरूपनो आविर्भाव थाय छे.

आ जगत्नुं केन्द्र सूर्य तेमां आकर्षण, प्रकाश, उष्णता, ए

त्रय प्रतीत थाय छे. अन्धकार समये आ पृथिवी सूर्यथी विमुख होवाथी ते उपर केवल आकर्षणनो आविर्भाव प्रतीत थाय छे; अरुणोदय समये पृथिवी उपर आकर्षण तथा प्रकाश ए द्वयनो आविर्भाव थाय छे; अने पृथिवी सूर्यने संमुख थये आकर्षण प्रकाश उष्णता ए त्रयनो आविर्भाव प्रतीत थाय छे.

ए सर्व उपरथी एम सिद्ध थाय छे के, वस्तुना सर्व गुणना आविर्भाव थवानो आधार तेना ग्राहकना अधिकार उपर छे.

सत्-चित्-आनन्द ए भिन्न छे नहि, किन्तु ग्राहकनी वृत्तिना भेदेकरी भेद जेवुं प्रतीन थाय छे.

चंपकमालती गुलाब आदि पुष्पराज, आम्रादि फलराज, एओमां स्पर्श रूप रस गंध छे. तेओनुं पृथक् पृथक् इन्द्रियद्वारा ग्रहण थाय छे; स्पर्श त्वक्इंद्रियद्वारा ज ग्रहण थइ शके छे; रूप चक्षुरिन्द्रियद्वारा ज ग्रहण थाय छे; इत्यादि. तेम अन्तःकरणनी पृथक् पृथक् वृत्ति अनुसार सत्-चित्-आनन्दनुं ग्रहण थाय छे.

अंत:करणनी सात्विकादि त्रण वृत्तिओ.

अन्तःकरणनी वृत्तिओ त्रिधा छेः—सात्विकी, राजसी, तामसी, किंवा शान्ता, घोरा, मूढा. ए सर्व वृत्तिओमां परमात्मानी सच्चित्स्वभावतानुं प्रतिबिंब थाय छे; परंतु शान्ता सात्विकी वृत्तिमां ज परमात्माना सच्चित्स्वभावसह आनन्दस्वभाव पण विशेषे प्रतीत थाय छे. अर्थात् सात्विकीवृत्ति ज परमात्माना समग्र सच्चिदानंद स्वरूपनी अभिव्यंजिका छे. अनेक घट कूप सरोवरादि जलाशयोमां एक ज प्रतिबिंबित चंद्रमाना समान,

अनेक प्राणीओना अन्तःकरणरूप उपाधिओमां एक ज सच्चि-दानन्द परमात्मानुं प्रतिबिंब थाय छे. जेम समल जलमां प्रतिबिंबित ते चंद्र अस्पष्ट देखाय छे, अने निर्मल जलमां प्रतिबिंबित चंद्र विस्पष्ट देखाय छे; तेम समल तामसीराजसी वृत्तिओमां परमात्मानो आनन्दअंश अस्पष्ट-तिरोहित-रहेछे, ते निर्मल सात्विकी वृत्तिमां विस्पष्ट आविर्भूत थाय छे.

जेम अग्निनां उष्णप्रकाशमांथी जलमां उष्णता मात्र आवी शके छे, प्रकाशता आवती नथी, परंतु काष्ठमां उष्णता प्रकाशता उभय आवी शके छे; तेम तामसी राजसी वृत्तिओमां परमात्माना सच्चित्स्वरूपमात्र व्यक्त थाय छे—प्रकटे छे, परंतु सात्विकी वृत्तिमां सत्-चित्-आनन्द-स्वरूप अंशत्रय व्यक्त थाय छे. अन्तर्मुख सात्विकी वृत्तिमां विद्या तथा एकाग्रता स्थिरा थये ते अभिव्यंजिका वृत्तिमां अखंडएकरसात्मता पामी सच्चित्-आनन्द-घन अभिन्नरूपे परमात्मा अभिव्यक्त थाय छे.

"यथा सूर्यस्तमः सर्वं प्रकाशीकुरुते तथा ।
अनुज्ञाता जगत्सर्वं स्वात्ममात्रं करोति हि ॥७६॥
दाह्यं दग्ध्वा यथा वह्निर्निर्व्यापारोऽवशिष्यते ।
अनुज्ञैकरसस्तद्वच्चिन्मात्रः परिशिष्यते" ॥ ७७ ॥

अनुभूतिप्रकाशे देवविद्या. अ. २०.

'जेम सूर्य सर्व अंधकारने प्रकाशमय करे छे तेम अनुभविता आत्मज्ञानी सर्व जगत्ने आत्ममात्र—सच्चिदानन्दस्वरूप—करे छे. जेम अग्नि, काष्ठादि दाह्य पदार्थोने बालीने, निर्व्यापार थइ रहे छे तेम अनुभवैकरस (पुरुष) चिन्मात्र अवशेष रहे छे.'

वेदान्तमर्यादा.

परमनिःश्रेयसप्रापक तथा परमात्मानुं अभिव्यञ्जक विशिष्ट वेदान्त ते वेदान्तनी मर्यादा.[1]

आत्मा स्वतः चिदानन्द अद्वितीय ब्रह्मात्मस्वरूप छे, पण स्वाश्रया[2] स्वविषया[3] अविद्या जे स्वानुभवगम्या[4] अने स्वाभासा[5] छे, तेणे (अविद्याए) करी स्वाभाविक चित्सदानन्द अद्वितीय ब्रह्मात्मभावथी (ते आत्मा) प्रच्युत (थइ), अनात्मा (जड) देहादिमां आत्मभावने पाम्यो सतो, अप्राप्त छे अशेष पुरुषार्थ जेने, अने प्राप्त छे अशेष अनर्थ जेने एवो, आत्मा अविद्याकामकर्मोए परिकल्पित ज साधनोवते इष्टनी प्राप्ति अने अनिष्टनी परिह्रति (निवृत्ति) आकांक्षतो अनुष्ठित लौकिकवैदिकसाधन[6]वते पण, मोक्षनामे परमपुरुषार्थरूप स्वार्थ प्रति न पामतो, मकरादिओ जेवा रागद्वेषादिओए अहिं तहिं (आलोक परलोकमां) आकृष्यमाण थतो, अने सुर-नर तिर्यक्आदि प्रभेदे करी भिन्ना नाना योनिओमां परिवर्तमान (वारंवार भ्रमतो) अने मोमुह्यमान (बहु भ्रान्तिथी मूर्छित थइ संसारने प्राप्त थतो) संसरतो सतो, पुण्यवशात् ईश्वरार्थ वेदोदित कर्मना अनुष्ठानवते कष्टेकरी रागादिमल गया छे

---

१. भगवान् **सनत्सुजाते** **विदुरना** योगबलथी प्राप्त थइ, शोकमोहथी अभितप्त **धृतराष्ट्रने** ब्रह्मविद्यावते पूर्णानन्द परमात्माना परमपदरूप स्वाराज्ये स्थापवा सारु जे उत्तम उपदेश कर्यो छे ते सनत्सुजातीयना भाष्यमां परमकारुणिक शंकर भगवान् उपोद्घातरूपे जे वदे छे ते **वेदान्तमर्यादा.** २. ‘स्व’ नाम आत्मा–परमात्मा– ब्रह्म छे ‘आश्रय’ नाम आधार जेनो ए ‘स्वाश्रया’. अथवा ब्रह्मने आश्रिता होवाथी ‘स्वाश्रया’ ३. ‘स्व’ नाम ब्रह्म तेने ज ‘विषय’ नाम आवरण करनारी तेथी स्वविषया. ४. मनुष्यना पोताना (हुं कंइ नथी जाणतो–में कंई न जाण्युं–एवा प्रकारना) अनुभवे करी जणाती. ५. चिदात्मा ब्रह्मना प्रकाशथी ज भासती–जणाती. ६. धनस्त्रीपुत्रादि ‘लौकिक’ साधन. यज्ञादिक ‘वैदिक’ साधन.

जेना, अने अनित्यादि दोषना दर्शने करी उत्पन्न थयो छे इहा-मुत्र फलभोगमां विराग जेने, अने वेदान्तोथी प्रतीयमान ब्रह्मात्मभावनो बुभुत्सु (बोधने–अवगतिने–इच्छतो–जिज्ञासु) वेदोदित शमदमादि साधनसंपन्न, (एवो विशिष्ट अधिकारी थइ) ब्रह्मविद् आचार्य प्रति (विधिपूर्वक) समीप जइ आचार्यने अनुसारे (आचार्यनु मन प्रसन्न थाय एवा व्यापारवते) वेदान्तना श्रवणादिए करी 'अहं ब्रह्मास्मि' (हुं ब्रह्म छुं) ए ब्रह्मात्मतत्त्वने यथावत् जाणीने, अज्ञान अने तेनां कार्य निवृत्त थयां छे जेनाथी एवो ब्रह्मरूपे स्थित थाय छे एवी वेदान्तमर्यादा छे.

'ज्ञान' शब्द अनेकार्थवाचक छे. प्रस्तुत प्रकरणना अनन्यलभ्य अद्वितीय ब्रह्मात्मतत्त्वज्ञानना विषयमां ए ज्ञान शब्दना प्रयोग वारंवार थवाना. ते संबंधमां ज्ञानशब्दना मुख्य अर्थ लक्षमां राखवानी अपेक्षा छे.

ज्ञानना भिन्न अर्थ.

जे ज्ञाने करी सर्व विषय अविशेषे–सामान्ये–जणाय ते **ज्ञान, साधन**ज्ञान वदाय छे. ते ज्ञानरूप साधने करी अज्ञान निवृत्त थये, जे ज्ञान–परमात्मतत्त्व, आत्मस्वभावचैतन्य, स्वस्वरूपस्फुरण, स्वयंज्योति, स्वयंप्रकाश, ज्ञप्तिमात्र, किंवा चिन्मात्र केवल वस्तु, एरूपे–आविर्भूत थाय छे, ते चित्उपलक्षित सच्चिदानन्दस्वरूप केवल सिद्ध **ज्ञान,** ते **साध्य**ज्ञानवाचक छे. ए साधनज्ञान, अने साध्यज्ञान जे सिद्धज्ञान, ए उभयमां एक ज 'ज्ञान' शब्दनो प्रयोग थाय छे. तथापि प्रसंगवशा अर्थमां भेद होय छे. ए अधिकारीए लक्षमां राखवा योग्य छे.

साध्य जे सिद्धज्ञान ते तो अखंडैकरस चिन्मात्र-भातितामात्र केवल वस्तु–एक ज छे. परंतु ते सदाप्राप्त ज्ञाननी प्राप्ति

अर्थ साधनज्ञानना उपाधिभेदथी, अनेक भेद प्रतीत

१. (सिद्धज्ञाननुं)–चैतन्यनुं–अनादिमत्त्व सते पण तेनी अभिव्यञ्जिका अन्तःकरणवृत्ति, इन्द्रियोना सन्निकर्षादिए करी, उद्भवे छे, एथी वृत्तिविशिष्टचैतन्य आदिमत् वदाय छे. ज्ञानना अवच्छेदकत्वथी वृत्तिविषे ज्ञानत्वनो उपचार थाय छे. अन्तःकरणवृत्तिअवछिन्नचैतन्य (ज्ञान) 'प्रमाणचैतन्य' छे. अन्तःकरण अवच्छिन्नचैतन्य 'प्रमातृचैतन्य' छे. ज्ञानना विषय घटादिए करी अवच्छिन्न चैतन्य 'विषयचैतन्य' किंवा 'प्रमेयचैतन्य' छे.

जेम जलाशयमांनुं जल, छिद्रद्वारा नीकळी कुल्यात्माए (नीकना आकारे) थई केदारो प्रति (क्याराओ प्रति) प्रवेशी केदाराकार थाय छे; तेम अन्तःकरण पण चक्षूरूप छिद्र आदिद्वारा नीकली घटादिविषयरूप केदार देश प्रतिप्रवेशी घटादिविषयाकारे करी परिणमे छे, त्यां शरीरथी लइने घटादिविषयपर्यन्त अन्तःकरणनो नीकना समान परिणाम ते **वृत्तिज्ञान** छे. ते वृत्तिए करी विशिष्टचेतन (किंवा चैतन्य) ते **प्रमाणचेतन छे**. अने वृत्तिज्ञानरूप जे अन्तःकरणनो परिणाम ते **प्रमाण.** जेम केदारमां जल जइने केदारना समानाकार थाय छे, तेम घटादि जे विषय छे तेओमां वृत्ति जइने घटादिना समानाकारने प्राप्त थाय छे, ते वृत्तिए अवच्छिन्न जे चेतन ते **प्रमाचेतन.** ज्ञानना विषय घटादिए करी अवच्छिन्नचेतन ते **विषयचेतन** किंवा **प्रमेयचेतन**. ए प्रकारे चैतन्य किंवा ज्ञान एक सते उपाधिसंबंधवशथी लौकिक बुद्धिए अनेकवत् कल्पाय छे.

अन्तःकरणनी घटादि विषयाकार जे वृत्ति, तेमां आरूढ चेतनने **प्रमा** किंवा **यथार्थज्ञान** वदाय छे. तेनुं साधन जे इन्द्रिय ते **प्रमाण** छे.... अन्तःकरणनो सर्व परिणाम **प्रमा** नथी, किन्तु शरीरना अन्तर् जे अन्तःकरण तेनो घटादिविषयपर्यन्त जे परिणाम ते **प्रमाण** अने विषयसह मिलीने विषयना समान जे अन्तःकरणनो परिणाम ते **प्रमा.**

षट्प्रमाणज अन्तःकरणना परिणामरूपा वृत्ति तद्विशिष्ट चैतन्य ए **ज्ञान,** किंवा चिदाभासविशिष्ट वृत्ति ए **ज्ञान.** अन्तःकरणविशिष्ट चेतन ए **ज्ञाता** छे, अथवा सर्व ज्ञानोनुं अधिकरण जीव ए **ज्ञाता** छे. दृश्यमान श्रूयमाण अज्ञात स्वअधिष्ठानसहित अन्तर्बाह्य स्थूलसूक्ष्म कार्यकारणरूप, प्रपंच, जे ज्ञाननो विषय, ते **ज्ञेय** छे.

वेदान्तविषयक **ज्ञाननुं** विशेषस्वरूप एक आ छेः–'एक एव परब्रह्म' एवुं परमार्थदर्शन ए ज्ञान. (गीता. ९–१५) अर्थात् महावाक्यानुसार भागत्यागलक्षणाथी जीवविषे अविद्याभागनो अने ईश्वरविषे मायाभागनो त्याग करी,

थाय छे. तत्त्वज्ञान विषये, आत्माअनात्म सर्व पदार्थना अवबोधनरूप शास्त्राचार्यना उपदेशे करी जनित 'विवेकसामर्थ्य', जेनो विषय परमात्मा छे अने साक्षात् फल मोक्ष छे, एवुं परम निःश्रेयसनुं साधनरूप ज्ञान छे. ए ज्ञानथी अविद्याकल्पित संसारित्वना निवर्तनद्वारा नित्यमुक्त सच्चिदानन्द आत्मस्वरूपना समर्पणरूप मोक्षनी–ब्रह्मभावनी–अभिव्यक्ति थाय छे.

भगवद्गीताभाष्यानुसार आत्मज्ञानना प्रकार.

ए उभय साध्य-साधन ज्ञान तथा ते ज्ञानवान् ज्ञानी, किंवा ए शब्दोना पर्याय–सम्यद्दर्शन, सच्चिदानन्दैकरस परमात्माने जाणनार सम्यद्दर्शी,–एओना संबंधमां श्रीभगवद्गीताना भाष्यमां श्रीशंकरभगवान् दृढप्रतीति अर्थे अनेक प्रामाणिक विचारो निरूपे छे, तेओमांना स्वल्पनो आशय अत्र समर्पाय छे.

परमेश्वरना जे तत्त्वने जाणीने अन्यत् पुरुषार्थसाधन ज्ञातव्य अवशिष्ट न रहे ए प्रकृत प्रकरणमां **ज्ञान** कथाय छे. ते ज्ञान शास्त्रआचार्यना प्रसादरूप उपदेशजनित अने आत्मानुं प्रत्यायक होय छे. ए आत्मप्रत्यायक ज्ञान भेदप्रत्ययनिवर्तक अने कैवल्यफलावसान[1] छे. ते निःश्रेयसहेतु आ-

---

तेओनो जे भेद प्रतीत थाय छे तेने दूर करी, जीव-ईश्वरमां जे चेतन भाग छे तेने भेदरहित–एक ज–ब्रह्मस्वरूप जाणवो. संपूर्ण प्रपंच अने तेनुं ज्ञान, स्वरूपना अज्ञानकालमां ज छे. स्थूलसूक्ष्मकारणशरीरथी भिन्न जे स्वस्वरूप ते स्वरूपनुं सच्चिदानन्द ब्रह्मरूपे अभेदज्ञान ते स्वरूपज्ञान. ए स्वरूप ज अधिष्ठान, ते अधिष्ठानना ज्ञानथी भ्रान्तिनी निवृत्ति थाय छे. रज्जुसर्पवत् अज्ञानथी प्रतीत थता मिथ्या प्रपंचनुं अने मिथ्या बन्धनुं जे भ्रान्तिज्ञान ते स्वरूपना ज्ञाने करी दूर थतां एक अधिष्ठान मात्र ज अवशेष रहे छे. सविषय भ्रान्तिज्ञाननो बाध अधिष्ठान स्वरूप ज होय छे.

१. कैवल्यफल छे अवसान–अन्त–प्राप्ति–जेथी एवुं ज्ञान.

त्मज्ञाननो आकार आवो छे. क्रियाकारकफलना भेदनी बुद्धि, अविद्याए करी, आत्मामां नित्य प्रवृत्त छे. ते अविद्या,—'मारुं कर्म, हुं कर्ता, आ (अमुक) फलअर्थे आ कर्म करीश',—एवा भेदवती अनादिकालथी प्रवृत्त छे. ए अविद्यानुं निवर्तक जे आत्मविषयक ज्ञान छे ते आ छेः—'आ हुं केवल अकर्ता अक्रिय अफल छुं. माराथी अन्य कंई पण नथी.' अव्यक्तादि स्थावरान्त भूतोमां, ए अद्वैतात्मविषय सात्विकज्ञानद्वारा, एक आत्मवस्तु देखाय छे, अने ए आत्मज्ञान, साक्षात् शोकमोहादि संसारहेतु दोषो तेओनी निवृत्तिनुं कारण छे. ए ज्ञान 'सम्यग्दर्शन' पण वदाय छे.

ए विशिष्टज्ञान, जे विधिए पमाय छे ते आ छेः—श्रद्धावान् तत्पर संयतेन्द्रिय मुमुक्षु, तत्त्वदर्शी ज्ञानी प्रति अभिगमन करीने प्रणिपात[1]सहित परिप्रश्न करे केः—'केवे प्रकारे बन्ध छे? केवे प्रकारे मोक्ष छे? केवी अविद्या छे?' ते ज्ञानी, मोक्षसाधनविशिष्ट अने कार्यक्षम ज्ञानने उपदेशे छे. ए उपदिष्ट ज्ञानने जाणीने—पामीने—अज्ञानज समस्त संसारना अनर्थनो हेतु जे मोह[2] ते मोहने (मुमुक्षु) पुनः पामतो नथी, अने ब्रह्मादिस्तम्बपर्यन्त भूतोने आत्मामां—परमेश्वरमां—देखे छे. जेम दीप्त अग्नि, काष्ठोनो भस्मीभाव करे छे; तेम ए ज्ञानरूप अग्नि, जन्ममरणादिनां हेतुभूत सर्व कर्मोने भस्मीभाव—निर्बीज—करे छे. आत्मेश्वरैकत्वदर्शनलक्षण ज्ञानसदृश शुद्धिकर इहां कंई छे नहि.

विशिष्टज्ञानद्वारा जे मोक्ष—निःश्रेयस-प्राप्त थाय छे तेनो क्रम आ छेः—(फलनिरपेक्ष अनुष्ठीयमान ईश्वरार्पण कर्मोए

१. दीर्घ नमस्कार. २. अविवेक बुद्धि, आत्मा-अनात्माना विवेकनो अभाव, कर्ताभोक्तारूपा बुद्धि.

करी) सत्त्वशुद्धि, ज्ञानप्राप्ति, (विवेकबुद्धिए कर्मादिमां अकर्मदर्शनरूप) सर्वकर्मसंन्यास, अने ज्ञाननिष्ठा.

शास्त्राचार्यना उपदेशे करी तथा न्यायेकरी[1] जेना संस्कृतात्माने अहंकृतभाव थतो नथी, अविद्याए आत्मामां कल्पित पंच[2] अधिष्ठानादि छे ए ज सर्व कर्मोना कर्ता छे, हुं नहि; हुं तो तेओना व्यापारनो साक्षीभूत छुं; एवुं जे जाणे छे, विद्वान्, स्वकर्मेकरी ईश्वरने सम्यक् पूजीने तेना प्रसादे करीने जनिता ज्ञाननिष्ठायोग्यतालक्षणा सद्योमुक्तिअवस्थानरूपा सिद्धिने प्राप्त थइने, जे ज्ञाननिष्ठारूप प्रकारे, (ज्ञानना पर्यवसानरूप–ज्ञाननी परिसमाप्तिरूप–सम्यक्प्राप्तिरूप–प्रकारे) परमात्माने पामे छे ते ज्ञाननिष्ठानी प्राप्तिनो क्रम आवो छेः–

भगवत्शरणैकपरायण थइ स्वकर्मेकरी (सर्वात्मा–सर्वभूतस्थित) भगवान्नुं अभ्यर्चन ए भक्तियोग छे. ते भक्तियोगेकरी मोक्षफल अवश्यंभावि छे. कारण ते भक्तियोगनी सिद्धिनी प्राप्तिरूप जे फल, ते ज्ञाननिष्ठायोगता छे. अने ते ज्ञाननिष्ठायोगताना निमित्तथी मोक्षफलावसाना जे **ज्ञाननिष्ठा**, तेनी सिद्धि छे. प्रत्यगात्मविषय प्रत्ययसन्तानकरणनो अभिनिवेश ए ज्ञाननिष्ठानुं स्वरूप छे. अने ते मोक्षफलावसाना छे. शास्त्राचार्यना उपदेशेकरी ज्ञाननी उत्पत्तिना परिपाकना हेतुनां सहकारिकारण–बुद्धि

ज्ञाननिष्ठा.

---

१. युक्तिएकरी. २. शरीरवाणीमने करी थतां सर्व कर्मो, तेनी सिद्धिनां पंचकरणो छे, ते ज कर्ता छे, तेनां नामः–(१) इच्छा द्वेष सुख दुःख ज्ञान आदिनी अभिव्यक्तिना आश्रयरूप **अधिष्ठान**–शरीर, (२) उपाधिलक्षण **भोक्ता–कर्ता**, (३) शब्दादिनी उपलब्धिसारू श्रोत्रादि द्वादश **करण**, (४) प्राणादि विविधा **चेष्टा**, (५) चक्षु आदिना अनुग्राहक सूर्यादि **देव**.

વિશુદ્ધત્વાદિ, અને અમાનિત્વાદિ ગુણ,—એઓને અપેક્ષીને જનિત ક્ષેત્રજ્ઞપરમાત્મૈકત્વજ્ઞાન,.........તે જ્ઞાનનું સ્વાત્માનુભવનિશ્ચયરૂપે જે અવસ્થાન તે **પરા જ્ઞાનનિષ્ઠા** છે.

અજ્ઞાનેકરી આત્માનાત્મજ્ઞાન આવૃત છે; તેથી સંસારી જન્તુઓ મોહ—કર્તૃભોક્તૃરૂપા અવિવેકબુદ્ધિ—પામે છે. આત્માના જ્ઞાનેકરી જે જન્તુઓનું અજ્ઞાન નાશિત થાય છે, તે જન્તુઓનું જ્ઞાન, આદિત્યવત્, સર્વજ્ઞેયવસ્તુને—પરમાર્થતત્ત્વને—પ્રકાશે છે. તેવા પંડિતો સમદર્શી થઇ તત્ત્વને દેખે છે. તેવા કેવલાત્મદર્શીઓ ઇષ્ટને—પ્રિયને—પામીને હર્ષતા નથી, અને અનિષ્ટને—અપ્રિયને—પામીને વિષાદતા નથી. તેઓનાં અન્તઃકરણ બાહ્યવિષયોમાં અસક્ત—પ્રીતિવર્જિત—હોય છે, અને સચ્ચિદાનન્દ બ્રહ્મમાં વ્યાપૃત હોય છે. તેથી બ્રહ્મનું અક્ષયસુખ તેઓ પામે છે. તેઓ જીવતાં જ સર્વ ભૂતોના હિતમાં—આનુકૂલ્યમાં—રત થઇ, બ્રહ્મભૂત—બ્રહ્મપ્રાપ્ત—થઇ બ્રહ્મમાં મોક્ષને પામે છે. સર્વ સંસારના વિચ્છેદનું કારણ જે બ્રહ્મૈકત્વદર્શન તેણે યુક્ત થઇ સમદર્શી આમ દેખે છેઃ—

સમદર્શન.

"सर्वभूतस्थमात्मानं सर्वभूतानि चात्मनि ।
ईक्षते योगयुक्तात्मा सर्वत्र समदर्शनः ॥"

गीता ६–२९

'સર્વત્ર' નામ સર્વ બ્રહ્માદિ સ્થાવરાન્ત ભૂતોમાં—વિષયોમાં—'સમ' નામ નિર્વિશેષ બ્રહ્માત્મૈકત્વવિષય 'દર્શન' નામ જ્ઞાન છે જેનું એવો 'સર્વત્ર સમદર્શન' યોગયુક્તાત્મા પુરુષ સર્વ ભૂતોમાં સ્થિત સ્વ-આત્માને દેખે છે અને બ્રહ્માદિ

---

૧ સર્વ ભૂતોમાં અત્યન્ત અસંસ્પૃષ્ટ અવિક્રિય 'સમ' નામ એક બ્રહ્મને દેખવાનું શીલ છે જેઓનું એવા.

स्तम्बपर्यन्त सर्व भूतोने आत्मामां एकता प्रति प्राप्त थएला देखे छे.

ए प्रकारे सर्व भूतोमां वासुदेवने—ईश्वरने—जे देखे छे अने सर्वना आत्मा जे ईश्वर ते ईश्वरमां सर्व भूतोने देखे छे, एवो योगी परमेश्वरना परमपदमां ज वर्ते छे. अने ते नित्य मुक्त छे.

"आत्मौपम्येन सर्वत्र समं पश्यति योऽर्जुन ।
सुखं वा यदि वा दुःखं स योगी परमोमतः ॥"

भ. गी. ६–३२

'यथा मने सुख इष्ट—अनुकूल—छे तथा सर्व प्राणीओने सुख इष्ट—अनुकूल—छे, अने जेम मने दुःख अनिष्ट—प्रतिकूल—छे, तेम सर्व प्राणीओने दुःख अनिष्ट—प्रतिकूल—छे' एम हे अर्जुन[1]! स्वआत्मानी उपमाना भावे सर्व भूतोमां सुख-दुःखने—अनुकूल प्रतिकूलने—'सम' नाम तुल्यताए देखे छे, ते कोइनुं प्रतिकूल आचरतो नथी एवो समदर्शी—सम्यग्दर्शननिष्ठ—योगी—ज्ञानी—सर्वमां उत्कृष्ट अभिमत छे.

ईश्वरनी 'क्षेत्र' लक्षण अपरा प्रकृति अने 'क्षेत्रज्ञ' लक्षण परा प्रकृति छे. ए प्रकृतिद्वय द्वारे सर्वज्ञ ईश्वर ज जगत्नुं कारण छे,—सर्व भूतोनी उत्पत्ति स्थिति तथा लयनो हेतु छे. एम छे तेथी सूत्रमां मणिना गणो परोवाया होय छे तेम परमेश्वरमां ज सर्व जगत् प्रोत छे—ग्रथित छे. ए प्रकारे सर्व भूतोना आत्मा परमेश्वर छे. तथापि ते नित्य-शुद्धबुद्धस्वभाव परमेश्वरने, रागद्वेषमोहादिएकरी अविवेकि जगत् जाणतुं नथी. प्राप्तपरिपाकज्ञान महात्मा ज प्रत्यगात्मा—परमात्मा—सर्वात्मा—परमेश्वरने जाणे छे.

---

१ शुक्लान्तरात्मस्वभाव, विशुद्धान्तःकरण.

यद्यपि परमेश्वर, सर्व भूतोने सम छे–तुल्य छे; तथापि जेम अग्नि सर्वने सम सते पण समीपस्थनुं शीत हराय छे, दूरस्थनुं शीत हरातुं नथी, तेम, ब्रह्मनिष्ठज्ञानीनो अनुग्रह थइ दुःखादि हराय छे, अज्ञानीओनो–परमेश्वरथी विमुखोनो–अनुग्रह थइ दुःखादि हरातुं नथी. पुनः जेम सूर्यनुं व्यापक तेज स्वच्छ दर्पणमां प्रतिफले छे, मलिन दर्पणमां प्रतिफलतुं नथी, एम ज्ञानी अज्ञानीना संबन्धमां परमेश्वर छे.

जे सम्यग्दर्शी, इन्द्रियना समुदायने सम्यग् नियमीने, सर्वकाले इष्टअनिष्टनी प्राप्तिविषये समबुद्धि छे, अने जे सर्व भूतोना हितमां रत छे, ते ज्ञानी परमेश्वरने पामे छे; अने अभेददर्शित्वथी ते परमेश्वरना आत्मभूत थाय छे. कैवल्यनी प्राप्तिमां सम्यग्दर्शीनुं स्वातंत्र्य छे.

तत्त्वज्ञानेकरी प्राप्तव्य जे ज्ञेय परब्रह्म ते अनिन्द्रियत्वे करी शब्दैकप्रमाणगम्य छे; अने ते 'नेति नेति' इत्यादि विशेष प्रतिषेधे करी निर्देशाय [१]छे.

ज्ञायमान जे ज्ञेय ते ज्ञात थते ज्ञानफल–ज्ञानगम्य–वदाय छे. सर्व प्राणिजातना हृदयमां–बुद्धिमां–ते ज्ञेय परमात्मा विशेषे करी स्थित छे. रज्जुशुक्तिकादिओना तद्विवेकना ज्ञानना अभावथी, अध्यारोपित सर्परजतादिना संयोगवत् भिन्न स्वभाव छे जे बेनो, एवा क्षेत्र-क्षेत्रज्ञ, किंवा विषय-विषयी, ते बेनो

क्षेत्र-क्षेत्रज्ञ-ज्ञान.

१ वेदान्तज्ञानद्वारा 'आत्मा ज एक छे' ए पारमार्थिक विज्ञान न होय त्यारे सत्ताद्वय प्रतीत थाय छे. दृष्टा-दृश्य, किंवा विषयी-विषय, किंवा आत्मा-अनात्मा, किंवा जीव-जगत्. ए बे सत्ताओमांथी बीजी दृश्यसत्ताने जाणवाने इन्द्रियादि प्रमाणो छे. प्राथमिक सत्ता जे दृष्टा-आत्मा-तेना ज्ञान अर्थ सत्शास्त्र छे, ते शास्त्र अज्ञातार्थज्ञापकत्वेकरी नहि, किन्तु अतद्धर्माध्यारोपण मात्रना निवर्तकत्वेकरी अन्त्य प्रमाण छे.

इतरेतर धर्माध्यासलक्षणसंबंध छे, ते, क्षेत्रज्ञत्व स्वरूपना विवेकना अभावना निबन्धनरूप छे. ते ए अध्यासस्वरूप क्षेत्र-क्षेत्रज्ञनो संयोग, ते मिथ्याज्ञानलक्षण छे. प्रकृतिस्थत्वरूप मिथ्याज्ञानेयुक्त पुरुषनो, सुखदुःखमोहात्मक भोग्य गुणोमां–सुखी दुःखी मूढ हुं छुं–एवा रूप जे संग, ए ज ते पुरुषने सत्असत्योनिजन्मप्राप्तिलक्षण संसारनुं कारण छे. कार्यकारणविषयाकारे परिणत प्रकृतिना सत्वरजस्तमोगुणोथी अन्य कर्ता नथी; सर्व अवस्थामां गुणो ज कर्ताओ छे, अने ते गुणोथी पर, ते गुणोना व्यापारनो साक्षीभूत आत्मा छे, एम जे देखे छे; अर्थात् ए मायोपाधिभूतत्रिगुणोनुं अतिक्रमण जे करे छे ते गुणातीत सम्यग्दर्शी छे.

प्रकृतिपुरुषनां किंवा क्षेत्रक्षेत्रज्ञनां लक्षणना भेदना यथाशास्त्र परिज्ञानपूर्वक, मायानिर्मित क्षेत्रथी भिन्न, निरस्तसर्वोपाधिविशेष ज्ञेय जे क्षेत्रज्ञ ते क्षेत्रज्ञने ब्रह्मस्वरूप करी जे देखे छे, ते निश्चित विज्ञानवान्नुं मिथ्याज्ञान दूर थाय छे.

परमात्मा ब्रह्मना ज्ञाननी परानिष्ठा, उपनिषद्वाक्योए तथा न्यायथी भगवाने गीतामां आत्माने जेवो गायो छे ते आत्माना ज्ञानसदृशी छे. ते परमात्माना अत्यन्त निर्मलत्वनी, अतिस्वच्छत्वनी, अने अतिसूक्ष्मत्वनी उपपत्तिथी[1], अने आत्माना समान बुद्धिना पण निर्मलत्वनी, स्वच्छत्वनी, सूक्ष्मत्वनी; उपपत्तिथी (संभवथी) आत्मचैतन्याकारना अवभासत्वनी उपपत्ति छे. अर्थात् यथोक्त साम्यानुसारथी आत्मचैतन्यआभासे करी प्राप्त–ज्ञानपरिणामवती बुद्धि (ज्ञान) थाय छे.

---

१ शास्त्रयुक्ति, संगति, प्रतिपादन, प्रकरणप्रतिपाद्यअर्थनिर्णायकत्व, सिद्धि.

आत्मचैतन्यभासे व्याप्त बुद्धि छे, एवी साभासबुद्धिए व्याप्त मन छे, एवा मनना आभासे व्याप्त इन्द्रियो छे, एवां इन्द्रियोए व्याप्त स्थूल देह छे. एथी लोकोए देहमात्रमां आत्मदृष्टि कराय छे.........एम बुद्धिआदि देहपर्यन्त सर्वत्र आत्मचैतन्याभासता छे. ए ज आत्मभ्रान्तिनुं कारण छे. एथी नामरूपादि अनात्माना अध्यारोपणनी निवृत्ति ज कार्या छे, विज्ञान कार्य नथी. विज्ञान तो सिद्ध ज छे.

ते अनात्माध्यारोपणनी निवृत्ति आत्मज्ञानथी थाय छे.

आत्मज्ञानथी मोक्ष.

तेथी परमनिःश्रेयसनो हेतु केवल आत्मज्ञान ज छे. ते आत्मज्ञान कैवल्यफलावसानत्वथी भेदप्रत्ययनुं निवर्त्तक छे.........यद्यपि निःश्रेयसनुं अकार्यत्व (स्वाभाविकत्व, नित्यत्व) होवाथी तेने (कर्मना किंवा ज्ञानना) साधनत्वनी अनुपपत्ति छे,—कारण जे नित्य वस्तु होय छे ते कर्मे किंवा ज्ञाने करातुं नथी—तथापि निःश्रेयसमां ज्ञान अनर्थक नथी; कारण के ज्ञान अविद्यानिवर्तक छे. अने अविद्यानिवर्तक ज्ञाननुं कैवल्यफलावसानत्व—परमनिःश्रेयसत्व—दीठुं छे. रज्जुआदि विषयमां सर्पादि अज्ञानतमनो निवर्तक प्रदीप-प्रकाश ते प्रदीपप्रकाशना फलवत् ज्ञान छे. जेम प्रकाशनुं फल सर्प-विकल्पनी निवृत्ति अने रज्जुकैवल्यावसान छे, तेम ज्ञाननुं फल अविद्यानी निवृत्ति अने आत्मकैवल्यावसान[1] छे.

सम्यग्दर्शनवान् प्रसन्नात्मा ज्ञानी, विध्वस्त—सर्वोपाधिभेद

---

१ अर्थात् ज्ञाननो स्वभाव आ छे के:—जे वस्तुनुं ज्ञान थाय ते वस्तु विषये अध्यास अने अज्ञान एओने दूर करे छे. जेम रज्जुनुं ज्ञान रज्जु विषये सर्पना अध्यासने अने रज्जुना अज्ञानने दूर करे छे. तेम आत्मानुं ज्ञान आत्माविषये अहंकारादि देहान्तना अध्यासने दूर करे छे तथा आत्माना, अज्ञानने दूर करे छे; एथी आत्माना सच्चिदानन्द स्वरूपनो प्रादुर्भाव थइ रहेछे.

सच्चिदानन्दात्मैकरस परमात्माने जाणे छे—अनुभवे छे, ते समकाल ज ते तद्रूप थाय छे. कारण स्वात्मोपपत्तिपरिपाक-हेतुयुक्त प्रतिपक्षविहीन जे ज्ञान ते ज्ञाननुं आत्मानुभवनिश्चयावसानत्व छे. अने ते स्वात्मानुभवनिश्चयरूपे अवस्थान ते ज परा ज्ञाननिष्ठा वदाय छे. भ्रान्तिप्रत्ययनिमित्त आ संसारभ्रम छे, परमार्थथी तो नथी ज. एम सम्यग्दर्शनथी अत्यन्त उपरम ज सिद्ध छे. सम्यग्दर्शनथी अज्ञानज सर्वसंसारानर्थहेतु सागरसमदुरुत्तार मोहनो नाश थाय छे, आत्मतत्त्वविषया स्मृतिनो लाभ थाय छे, अने ए लाभथी सर्व हृदयग्रंथिओनो विप्रमोक्ष थाय छे.

आत्मबोध[1].

यथोक्त साधनसंपन्न मुमुक्षुओने अपेक्ष्य आत्मबोध आ छेः—

(जेम पाक करवामां काष्ठ जल पात्रादि साधनो छे परंतु प्रधान साधन अग्नि छे, तेम मोक्षमां परंपरा क्रमेकरी कर्म-उपासनादि साधनो छे परंतु ए) अन्य साधनोथी मोक्षनुं साक्षात् एक साधन बोध छे. पाकना अग्निवत् (अग्निविना पाक सिद्ध थतो नथी तेम) ज्ञान विना मोक्ष सिद्ध थतो नथी. (२) अविद्याने कर्म निवर्ततुं नथी, कारण (अविद्या अने अविद्याजन्य कर्म उभयनी परस्पर) विरोधिता नथी. जेम तेज तिमिरसंघने हणे छे, तेम विद्या ज अविद्याने निश्चय हणे छे ज. (३) जेम मेघना दूर थयाथी सूर्य (स्वयं प्रकाशे छे) तेम (ज्ञानेकरी) अज्ञाननो नाश थये अज्ञानथी

---

१ श्रीशंकरभगवान्कृत प्रकरण ग्रंथ छे. ते मूल अने तेनुं समश्लोकी पद्यप्रत्ययान्तर संवत् १९४७ ना वर्षनां मासिकपत्रो—**आर्यधर्मप्रकाश, सुदर्शन** अने **महाकालमां** प्रसिद्ध थयुं छे. ते मूलनुं प्रायशः गद्यप्रत्ययान्तर अत्र छे. एमां वेदान्तना—तत्त्वज्ञानना सिद्धान्तना—संग्रहनो संक्षेप आवे छे.

परिच्छिन्न[1] जेवो (जणातो) आत्मा केवल (परिपूर्ण) ज स्वयं प्रकाशे छे. (४) जेम कतकरेणु[2] जलने (निर्मल करी पोते नाश पामे छे–शमी जाय छे) तेम (जेणेकरी जणाय ए, वृत्तिनुं) ज्ञान, अज्ञाने कलुषी[3] करेला जीवने ज्ञानना अभ्यासथी निर्मल करी, पोते नाशे छे–शमी जाय छे. (अने एक ज अद्वय आत्मस्वभाव चैतन्य मात्र रहे छे.) (५)

रागद्वेषादिए करी संकुल[4] संसार स्वप्नतुल्य छे. स्वकालमां सत्यवत् भासे छे, अने प्रबोध थये असत्यवत् थाय छे. (जेम स्वप्न असत्य–मिथ्या–छे, पण पोताना निद्राकालमां सत्य जेवुं भासे छे, जाग्रत् थये असत्य जणाय छे; तेम संसार असत्य–मिथ्या–छे, पण पोताना कारणभूत अज्ञानकालमां सत्यवत् भासे छे; महावाक्य श्रवणादिएकरी आत्मज्ञान थये–प्रबोध थये–संसार असत्य–मिथ्या–जणाय छे. (६)

जेम (शुक्तिनुं नीलपृष्ठ त्रिकोणादि[5] विशेषज्ञान ज्यांसुधी उत्पन्न थयुं नथी त्यांसुधी) शुक्तिमां रूपु सत्य भासे छे, तेम सर्वनुं अधिष्ठान अद्वय ब्रह्म जणायुं नथी त्यांसुधी जगत् सत्य भासे छे. (७)

जेम हाटकमां (सुवर्णमां) कटकादि[6] (कल्पित छे) तेम नित्य सच्चिदात्मा अनुस्यूत[7] विष्णुमां[8] विविध (देव नर स्थावर जंगमादि) सर्व व्यक्तिओ[9] (कल्पित छे.) (८)

(जेम मठ घट आदि उपाधिओना भेदेकरी तेओमां एक ज आकाश नानाविधरूपे भासे छे अने ते उपाधिओनो नाश

---

१ सीमा करेल, कटको. २ निर्मली नामे ओषधि जे मलिन पाणीने निर्मल करे छे ते. ३ कर्तृत्व भोक्तृत्वादिए अभिमानी–संसारी–मलिन–दुःखी–करेल. ४ व्याप्त, भरेलो. ५ शीपनो कालो पाछळनो भाग अने त्रिकोण आकार. ६ दोरो, अंकोडा, सांकलां, कुंडल आदि घरेणाना घाट. ७ अनुगत. ८ व्यापक. ९ स्थावर जंगमनां जूदां जूदां रूप.

थये केवल एक ज आकाश जणाय छे तेम.) आकाश सम नाना उपाधिगत हृषीकेश[1] विभु[2], ते देहादि नाना उपाधिना भेदथी भिन्नवत् भासे छे, (परंतु ब्रह्मात्मैक्य ज्ञानेकरी) ते उपाधिओनो नाश थये केवल (एक ज परमात्मा) छे. (९)

जेम (स्वभावथी मधुर शुद्ध) जलमां (आम्लादि रस अने रक्तादि रंग मलेथी) रसवर्णादिभेद आरोपित थाय छे, तेम आत्माविषये नाना उपाधिना वशथी जातिवर्ण आश्रम आदि आरोपित छे. (१०)

(आत्माना अविद्याए कल्पित उपाधित्रय.)

कर्मोएकरी संचित[3], पंचीकृत महाभूतथी संभव छे जेनो एवुं, (स्थूल) शरीर छे. ते सुखदुःखोना भोगनुं आयतन[4] छे–कहेवाय छे. (११) पंचप्राण, (ज्ञानअर्थ तथा कर्मअर्थ) दश इन्द्रिय, मन अने बुद्धि (ए १७) एओथी समन्वित[5], अपंचीकृत भूतोथी उठेलुं सूक्ष्म शरीर छे. ते (सुखदुःखोना) भोगनुं साधन छे (१२). अनिर्वाच्या अनादि अविद्या कारणउपाधि (कारण शरीर) कहेवाय छे. ए उपाधित्रयथी अन्य (ए उपाधिनो साक्षी) आत्माने निश्चय जाणे. (१३)

जेम नीलवस्त्रादिना योगेकरी (श्वेत) स्फटिक (ते ते वस्त्रना रंग जेवा रंगनो भासे छे तेम) पंचकोश[6]आदिना योगेकरी[7] शुद्ध आत्मा ते ते कोशमय जेवो स्थित छे. (परंतु वस्तुतः आत्मा उपाधिरहित शुद्ध छे.) (१४)

(असंग आत्मस्वरूपना ज्ञानना विवेचननो प्रकार.)

जेम तुषादि (फोतरांरूप) कोशोए युक्त शरीरने युक्तिए

---

१ मन आदि सर्व इन्द्रियना प्रवर्तक, नियामक. २ व्यापक. ३ रचित. ४ भोगनुं स्थान. ५ युक्त. ६ अन्नमय, प्राणमय, मनोमय, विज्ञानमय, अने आनन्दमय ए पंचकोश, अने देहत्रयना खावुं पीवुं आदि धर्म. ७ मिथ्या तादात्म्य.

खांडीने तंडुलने जुदो करे छे, तेम पंचकोशोए युक्त शरीरने युक्तिवते भिन्न करीने आन्तर शुद्ध आत्माने (अधिकारी) विवेचे,–विवेक करी (भेद करी शरीरथी भिन्न) जाणे. (१५)

जेम (सूर्यप्रकाश सर्वत्र होय छे पण पृथिवीतलादि अ-स्वच्छमां तेनुं प्रतिबिंब भासतुं नथी किन्तु दर्पणादि) स्वच्छोमां प्रतिबिंब भासे छे, तेम आत्मा सदा सर्वगत छे पण सर्वत्र भासतो नथी, (किन्तु स्वच्छा) बुद्धिमां ज भासे छे. (१६)

(प्रजाप्रकृति आदिनी सभामां स्थित सते तेओथी भिन्न सर्व दृश्यना साक्षीरूप) राजावत्, देह इन्द्रिय मन बुद्धि प्रकृति[1] (एओमां स्थित सते) एओथी विलक्षण ते (मनादि)-नी वृत्तिओना साक्षी आत्माने (अधिकारी) जाणे. (१७)

जेम अभ्रो[2] धातां चंद्रमा धातो होय एम (लोकोने) देखाय छे, तेम इन्द्रियोना व्यापारो थए आत्मा व्यापारी जेवो अविवेकीओने देखाय छे. (१८)

जेम सूर्यना प्रकाशने आश्रयीने जनो वर्ते छे, तेम आ-त्माना चैतन्यने आश्रयीने देह इन्द्रिय मन बुद्धि पोताना अर्थमां (विषयोमां) वर्ते छे. (१९)

जेम (निर्मल) गगनमां नीलतादिने (जनो) अध्यसे छे–कल्पे छे, तेम अमल (असंग) सच्चिदात्मामां देहइन्द्रियोना गुणोने तथा कर्मोने अविवेकवते (जनो) अध्यसे छे. (२०)

जेम जलना चलनादि जलगत[3] चंद्रमामां कल्पाय छे, तेम मानस[4] उपाधिना कर्तृत्वादिओ आत्मामां अज्ञानथी कल्पाय छे. (२१)

बुद्धिसते राग इच्छा सुखदुःखादि प्रवर्ते छे, सुषुप्तिमां

---

१ जडपरिणामी दृश्यो. २ वादळां. ३ पाणीमां प्रतिबिंबित थयेला. ४ अहंकारना.

बुद्धिनो नाश थये रागादि नथी होतां, तेथी रागादि बुद्धिनां छे, आत्मानां तो नथी. (२२)

(आत्मानो स्वभाव.)

जेम सूर्यनो स्वभाव प्रकाश छे, जलनो स्वभाव शैत्य छे, अग्निनो स्वभाव उष्मता छे, तेम आत्मानो स्वभाव सत् चित् आनन्द नित्य निर्मलता छे. (२३)

आत्मानो सच्चिदंश अने बुद्धिनी वृत्ति ए बेने अविवेके करी संयोजीने 'हुं जाणुं छुं' एम (अहंकारवृत्ति) प्रवर्ते छे. (२४) (परंतु) कोइ काले आत्माने विक्रिया छे नहि, अने बुद्धिने बोध छे नहि. (साभास अहंकार) जीव, (देहेन्द्रियादि) सर्वने अलं[1] जाणीने (ए देहेन्द्रियादि सर्व हुं छुं एम विचारीने हुं) ज्ञाता द्रष्टा एम मोहे छे—भ्रान्त थाय छे. (२५) जेम (अन्धकारमां) (रज्जुने सर्प जाणीने (बिहीकण) भयने वहे छे,) तेनुं वास्तव रज्जुस्वरूप जाण्युं तो निर्भय थाय छे तेम आत्माने जीव जाणीने (अज्ञानीओ) भयने वहे छे. 'हुं जीव नहि, परमात्मा छुं' एम जाण्युं तो निर्भय (सुखी) थाय छे. (२६)

जेम दीप घटादिने (प्रकाशे छे, घटादिवते दीप प्रकाशातो नथी तेम,) एक आत्मा बुद्धिआदि इन्द्रियोने अवभासे छे, ते बुद्धिआदि जडोए स्वात्मा अवभासातो नथी. (२७)

जेम (आपेक्षिक स्वयंप्रकाशेकरी) दीपने (पोताना प्रकाशनिमित्त) अन्य दीपनी इच्छा नथी, तेम बोधस्वरूपताएकरी आत्माने स्वबोधमां अन्य बोधनी इच्छा नथी. आत्मा पोते प्रकाशे छे. (२८)

---

१ अत्यर्थं, संपूर्ण छे एम.

(आत्मज्ञाननो प्रकार.)

'नेतिनेति'[1] ए वाक्येकरी निखिल उपाधिओने निषेधीने (भागत्याग लक्षणाएकरी) महावाक्योवते जीवात्मा अने परमात्मानुं ऐक्य (ज्ञान अधिकारी) पामे. (२९)

आविद्यक[2] शरीरादि दृश्य बुद्बुद्वत्[3] क्षर छे, एथी विलक्षण निर्मल (निरुपाधिक सच्चिदात्मक) ब्रह्म छे, ते हुं छुं, एम (विद्वान्) जाणे. (३०)

(आत्मज्ञानीना मनननो प्रकार.)

देहथी अन्यत्व होवाथी (हुं देहथी अन्य होवाथी) जन्म जरा कार्श्य लय आदिओ मारां नथी; अने निरिन्द्रियता होवाथी शब्दादि विषयो सह संग पण नथी. (३१)

'अप्राण अमन शुभ्र' (आत्मा छे) इत्यादि श्रुतिना शासनथी मारूं अमनस्त्व[4] होवाथी दुःख, राग, द्वेष, भय आदिओ मारां नथी. (३२–३३[5])

'हुं निर्गुण निष्क्रिय नित्य निर्विकल्प निरंजन निर्विकार निराकार नित्यमुक्त निर्मल छुं. (३४)

'आकाशवत् (हुं) सर्व (दृश्यना) बहिरंतर्गत छुं, सर्वमां सदा सम छुं, अच्युत, शुद्ध, निःसंग, निर्मल, अचल छुं.(३५)

'जे नित्य शुद्ध विमुक्त एक अखंडानन्द अद्वय सत्य ज्ञान अनंत परब्रह्म छे ते (परब्रह्म ज) हुं छुं.' (३६)

ए प्रकारे 'ब्रह्म ज छुं' एम निरंतर अभ्यस्ता वासना, जेम रसायन रोगोने हरे छे तेम, अविद्याना विक्षेपोने हरे छे. (३७)

---

१ अनात्माना निरसनवाळां वचनो. २ जड अज्ञाननां कार्य. ३ पाणीना परपोटा जेवां क्षणभंगुर. ४ मनरहितता, अमनपणुं. ५ श्लोक ३३ मो बहु आवृत्तिओमां नथी अने प्रसंगोपात्त आवश्यक न होवाथी क्षेपक जेवो भासे छे तेथी लीधो नथी.

(ब्रह्मना अनुसन्धाननां साधन.)

विविक्त[1] देशमां आसीन, विरागवान्, विजितेन्द्रिय, अनन्यधी[2] (विद्वान्) ते अनन्त एक आत्मा प्रति भाव करे (आत्मानुं अनुसन्धान–करे.) (३८)

सुबुद्धिमान् बुद्धिवते अखिल दृश्यने आत्मामां ज प्रविलापीने निर्मल आकाशवत् एक आत्मा प्रति सदा भाव करे. (३९)

परमार्थवित् (ज्ञानी), रूप वर्ण आदिक सर्वने त्यजीने परिपूर्ण चिदानन्द स्वरूपे (अभेदेकरी) रहे छे. (४०)

परमात्मामां ज्ञाता ज्ञान ज्ञेयनो भेद विद्यमान नथी. चिदानन्दना एक रूपत्वथी स्वयं (आत्मा पोते) ज दीपे छे-प्रकाशे छे. (४१)

एम आत्मारूप–अन्तःकरणरूप–अरणिमां[3] ध्याननुं मथन सतत करतां, अवगतिरूप–ज्ञानरूप–ज्वाला उदिता थइ अज्ञानरूप इन्धनने दहे छे–बाले छे. (४२)

अरुणसम बोधवते पूर्वे तम(समअज्ञान)नो नाश थये पछी अंशुमान् सूर्यसम स्वयं आत्मा ज आविर्भवे छे–प्रकट थाय छे. (४३)

आत्मा तो सतत प्राप्त छे पण अविद्याएकरी अप्राप्तवत् भासे छे, ते अविद्यानो नाश थये, स्वकंठना आभरणसम, (आत्मा) प्राप्तवत् भासे छे. (४४)

स्थाणुमां पुरुषवत् भ्रान्तिए करेली, ब्रह्ममां जीवता छे.

---

१ जनसंबाध वर्जित, एकान्त देशमां सुखासन करी बेसनार. २ अन्य अनात्मा विषयोमां नहि किन्तु ब्रह्मात्मामां ज निश्चयात्मिका बुद्धि छे जेनी एवो विद्वान्. ३ अरणिना बे लाकडाना नीचेनामां उपरना भागवते मंथन कर्याथी अग्नि उत्पन्न थाय छे तेम.

जीवनुं ते तात्त्विकरूप दृष्टे—दीठे—सते, (जीवनो जीवभाव) निवर्ते छे. (४५)

तत्त्वस्वरूपना अनुभवथी उत्पन्नज्ञान, अहं मम (हुं अने मारूं) एवा अज्ञानने, (उदित सूर्य) दिशाना भ्रमने जेम (दूर करे तेम), अञ्जसा[1] बाधे छे—दूर करे छे. (४६)

सम्यक् विज्ञानवान् योगी, ज्ञानरूप चक्षुवते, अखिल सर्वने (दृश्य प्रपंचने) आत्मामां ज स्थित एकआत्म—एक अभिन्न स्वरूप—देखे छे. (४७)

आ सर्व जगत् आत्मा ज छे, मृत्तिकाथी घटादिओ (अन्य छे नहि) तेम आत्माथी (दृश्य विविध जगत्) अन्य छे नहि. (तेथी ज्ञानी) सर्वने आत्मरूप ज देखे छे. (४८)

भ्रमरकीटवत्, जीवन्मुक्त तो, पूर्वना उपाधिना (देह मन बुद्धि आदिना) गुणोने त्यजे छे अने सच्चिदानन्दरूपत्वथी ते (ब्रह्मने) जाणतो सतो ब्रह्म थाय छे—ब्रह्मभावने पामे छे. (४९)

मोहार्णवने तरीने, रागद्वेषादि राक्षसोने हणीने, शान्तिए करी समायुक्त योगी आत्माराम थइ विराजे[2] छे. (५०)

(जीवन्मुक्तनां लक्षण.)

आत्माना सुखेकरी निर्वृत[3] (जीवन्मुक्त योगी) बाह्यनां अनित्य सुखोमां आसक्तिने त्यजीने, घटस्थ दीपवत्, स्वच्छ स्वअन्तर्मां ज प्रकाशे छे. (५१)

मुनि उपाधिस्थ सते पण ते (उपाधिओना) धर्मोए व्योमवत्[4] निर्लिप्त छे, सर्वविद् सते मूढवत् रहे छे, अने वायुवत् असक्त आचरे. (५२)

---

१ शीघ्र, यथार्थ, अनायास. २ ए श्लोकमां श्रीरामचन्द्रनो ध्वनि भासे छे. ३ सुस्थ—सुखी. ४ आकाशसम.

(विदेहकैवल्य.)

जेम जलमां जल, आकाशमां आकाश, अथवा तेजमां तेज प्रवेशे छे, तेम उपाधिना विलयथी (सर्वत्र व्यापक) विष्णुमां मुनि, निर्विशेष[1] जेम थाय तेम, प्रवेशे. (५३)

(ब्रह्मनुं सर्वातिशयत्व.)

जे लाभथी अपर लाभ नथी, जे सुखथी अपरसुख नथी, जे ज्ञानथी अपर ज्ञान नथी, ते ब्रह्म, एम (ज्ञानी) निश्चय धारे–जाणे. (५४) जे देखीने–दीठा पछी–अपर दृश्य नथी, जे थइने–जे थया पछी–पुनर्भव नथी, जे जाणीने अपर ज्ञेय नथी, ते ब्रह्म एम (ज्ञानी) अवधारे. (५५) जे तिर्यक् ऊर्ध्व अधः पूर्ण अद्वय अनन्त नित्य एक सच्चिदानन्द छे ते ब्रह्म एम (ज्ञानी) अवधारे. (५६) जे अव्यय अखंडानन्द एक, अतत्[2]नी व्यावृत्ति रूपेकरी, वेदान्तोए लक्षाय छे ते ब्रह्म छे, एम (ज्ञानी) अवधारे. (५७) ते अखंडानन्द-रूपना आनन्दना लवने आश्रित अखिल ब्रह्मादिओ तारतम्येकरी[3] आनन्दी थाय छे. (५८) अखिल (देहादि अनात्मा) वस्तु ते ब्रह्मयुक्त छे, व्यवहार (पण) ते ब्रह्म अन्वित छे, तेथी, अखिल क्षीरविषे[4] सर्पि सम, सर्वगत ब्रह्म छे–विश्व विषे ब्रह्म व्याप्त छे. (५९)

जे अनणु अस्थूल अह्रस्व अदीर्घ अज अव्यय अरूप अगुण अवर्ण अनाख्य छे, ते ब्रह्म छे एम अवधारे. (६०) जेना भासेकरी अर्कादि[5] भासे छे, भास्योयेकरी–जे भासाय नहि, जेणेकरीने आ सर्व (दृश्य जगत्) भासे छे, ते ब्रह्म छे एम अवधारे. (६१)

---

१ भेदक धर्मरहित. २ अनात्माना निरसनेकरी, दृश्य प्रपंचना निषेधेकरी. ३ वधारे बहु वधारे पणावते, न्यूनाधिकतावते. ४ समग्र दूधमां घी व्यापी रहे छे तेम. ५ सूर्यादि.

वह्निए[1] प्रतप्त आयसपिंडवत् ब्रह्म, स्वयं अन्तर् बहिर् व्यापीने अखिल जगत्‌ने भासावतुं, प्रकाशे छे. (६२) (आ) विलक्षण जगत् (अधिष्ठानरूपे जोतां) ब्रह्म छे, ब्रह्मथी अन्यत्, किञ्चित् नथी; ब्रह्मथी अन्यत् जो भासे तो ते, जेम मरुमरीचिका[2] छे तेम, मिथ्या छे. (६३) जे जे देखाय छे शृणाय छे (ते) ब्रह्मथी अन्यत् नथी, तत्त्वज्ञानथी ते सच्चिदानन्द अद्वय ब्रह्म ज छे. (६४) ज्ञानचक्षु ज, सर्वग सच्चिदात्माने निरीक्षे छे, जेम भास्वान् भानुने अन्ध (मनुष्य देखी शके नहि तेम) अज्ञानचक्षु (मनुष्य सच्चिदात्माने) निरखी शके नहि. (६५)

श्रवणादिए उद्दीप्त (एवा) ज्ञान (रूप) अग्निए परितापित, सर्व मलोथी मुक्त जीव–आत्मा, सुवर्णवत्, स्वयं प्रकाशे छे. (६६) कारण के (एवो शोधित) हृदयाकाशमां उदित सर्व व्यापी सर्वधारी आत्मा (रूप) बोधभानु तमोपहृत्–अन्धकारने हरनार–छे, जे आत्माएकरी सर्व प्रकाशे छे. (६७)

(आत्मबोधरूप तीर्थने सेवेथी कृतकृत्यता.)

जे विनिष्क्रिय (तत्त्वज्ञानी परमहंस), दिशा देशकाल आदिने अपेक्ष्या विना, स्वात्मा (रूप) तीर्थ–जे सर्वगत छे, शीतादिहृत् नित्यसुख (रूप) निरंजन छे–ते (परमात्मारूप) तीर्थने भजे छे ते सर्ववित् सर्वगत अमृत (मुक्त–परमात्मा–) थाय. ६८

---

१ अग्निए लाल तपवेला लोखंडना गोळानी पेठे. २ निर्जल मरु देशमां सूर्यना किरणमां जलनी भ्रान्ति थाय छे तेवुं. झांजवांनां जल जेवुं खोटुं.

माण्डूक्य उपनिषद्[1]मांथी.

"निवृतेः सर्वदुःखानामीशानः प्रभुरव्ययः ।
अद्वैतः सर्वभावानां देवस्तुर्यो विभुः स्मृतः" ॥१०॥

गौडपादीयकारिका-प्रथम प्रकरण.

(प्राज्ञ-तैजस-विश्वलक्षण) सर्वदुःखोनी निवृत्तिथी (तुरीय आत्मा) 'ईशान' नाम प्रभु (दुःखनिवृत्ति प्रति समर्थ थाय) छे, कारण दुःखनी निवृत्तिनुं निमित्त तेनुं विज्ञान ज छे. (स्वरूपथी व्यभिचरतो नथी तेथी) 'अव्यय' छे. (रज्जुसर्पवत्) सर्वभावोनुं मृषात्व छे तेथी 'अद्वैत' छे; (ते ए द्योतनथी) 'देव' छे, 'तुर्य' नाम (अवस्थात्रयातीत) चतुर्थ छे, 'विभु' नाम व्यापी (विद्वःतुअनुभवसिद्ध होवाथी) स्मृत छे.

एम अविद्याकृत दुःखप्रद द्वैतप्रपंच विद्याएकरी शान्त थये सच्चिदानन्द परमात्मा ज प्रकाशे छे.

जेम रोगार्तने रोग निवृत्ति थये स्वस्थता छे, तेम दुःखात्मक आत्माने द्वैतप्रपंचनो उपशम थये स्वस्थता छे. द्वैतप्रपंच अविद्याकृत छे, विद्याएकरी तेनो उपशम थाय छे. एथी ब्रह्मविद्यानुं प्रकाशन महात्मा करे छे. कइंक विस्तरथी एनो अर्थ आ प्रमाणे छेः—

१ जेम मंडूक (देडको) **स्थल** उपरथी त्रण कुदका मारीने **जलमां** प्रवेश करे छे तेम, ए तत्त्व अप्रबोधलक्षण जगत् स्वप्न सुषुप्ति ए स्थलथी उलंघीने सुखमय जलस्थानीय चतुर्थपाद ब्रह्मभावने जीवात्मा पामे छे. एवा मंडूकरूप आत्मानी प्रतिपादिका उपनिषद् ते **मांडूक्य** कहेवाय छे.

"माण्डूक्यमेकमेवालं मुमुक्षूणां हितार्[1]थये
तथाप्यसिद्धं चेत् ज्ञानं दशोपनिषदं पठ" ॥

मुक्तिकोपनिषद्. १–२७

१ 'विमुक्तये' एवुं पण पाठांतर छे.

जेम रज्जुमां सर्पादिना विकल्पनो उपशम थये रज्जु तत्वनी उपपत्ति थाय छे तेम द्वैतप्रपंचनो उपशम थये अद्वैतनी प्रतिपत्ति थाय छे, अने एक ज आत्मा सर्वभूतस्थ देखाय छे. स्वरूपभूत मोक्षप्रतिबन्धनुं निवर्तकत्व ए वेदान्तशास्त्रनुं प्रयोजन छे. यथा ज्वरादि रोगेकरी अभिभूत मनुष्यने स्वरूपभूता स्वस्थता प्रथम होय छे, पण ते रोगेकरी प्रतिबद्धा थये, न होय एवी थाय छे. ते स्वस्थता पाछी, चिकित्साशास्त्रीय उपायोना प्रयोग वशथी प्रतिबंधभूत रोग गये सते, अभिव्यक्ता थाय छे.

तथा स्वअविद्याथी प्रसूत अहंकारादि द्वैतप्रपंचना संबंधथी आत्मामां दुःखने आरोपीने 'हुं दुःखी छुं, मारे सुख प्राप्तव्य छे,' एम जाणनार मनुष्य पोते स्वतः निखिल दुःखरहित अने निरतिशयानन्द-एकतान छे, तेने परम कारुणिक आचार्येकरी उपदिष्ट वाक्योवते उठेली अद्वैत-विद्याथी द्वैतनिवृत्ति थये, अने प्रतिबंधनो ध्वंस थये स्वभावभूता परमानन्दता अने निरस्तसमस्तानर्थता स्वारस्येकरी अभिव्यक्ता थाय छे. ए ज स्वस्थता छे ते परिपूर्ण वस्तु स्वभावथी अतिरिक्ता-भिन्ना-नथी.

आत्मदेव प्रथम स्वमायावते जीवभाव—कर्ता भोक्ता—कल्पे छे. सर्व कल्पनानुं मूल जीवकल्पना छे. ते जीवकल्पना शा निमित्ता छे ते वदे छेः—

"अनिश्चिता यथा रज्जुरन्धकारे विकल्पिता ।
सर्पधारादिभिर्भावै स्तद्वदात्मा विकल्पितः ॥"

वैतथ्यप्रकरण १७.

लोकमां मंद अन्धकार विषे स्व-रूपेकरी अनिश्चिता रज्जु, पूर्वस्वरूपना अनिश्चित निमित्तेकरी, सर्प, उदकधारा, वा

दण्ड, एम अनेकधा विकल्पिता थाय छे. जो पूर्वे ज रज्जु-स्वरूपेकरी निश्चिता होत तो, सर्पादि विकल्प थात नहि. जेम स्वहस्तनां अंगुली आदि (प्रथमथी निश्चित होवाथी सर्पादिना विकल्पनो संभव सते ते संबंधमां थतो नथी) ए दृष्टान्त छे.

ते प्रमाणे हेतुफलादि (जे कर्तृत्व भोक्तृत्व रागद्वेषादि) संसारधर्मरूप अनर्थथी विलक्षणतारूपे–नाम स्वविशुद्धविज्ञप्ति मात्र सत्ता अद्वयरूपे,–अनिश्चितत्व (निमित्त) थी आत्मा, जीवप्राणादि अनन्त भाव भेदोएकरी विकल्पित थाय छे. ए सर्व उपनिषदोनो सिद्धान्त छे.

"निश्चितायां यथा रज्ज्वां विकल्पो विनिवर्तते।
रज्जुरेवेति चाद्वैतं तद्वदात्मविनिश्चयः ॥१८॥"

वैतथ्यप्रकरण.

जेम रज्जु निश्चिता थये (सर्प उदकधारा दण्डादि) विकल्पो निवर्ते छे, अने रज्जु ज छे एम अद्वैत (निश्चित थाय छे), तेम 'नेति नेति' एम सर्व संसारधर्मशून्य–प्रतिपादक शास्त्रेकरी जनित विज्ञानरूप सूर्यना आलोककृत (प्रकाशकृत) आत्मानो निश्चय छेः–'आत्मा ज आ सर्व छे.········अमर अमृत अभय एक ज अद्वय छे.'

प्राणादिलक्षण संव्यवहार, रज्जुसर्पवत्, आत्मामां कल्पित छे. रज्जुसर्पादिलक्षणा मनोविकल्पनानां प्रलय वा उत्पत्ति रज्जुमां थतां नथी; अने रज्जुसर्पनां उत्पत्ति वा प्रलय मनमां पण थतां नथी; अने (बाह्यरज्जु अने अन्तर् मन ए) उभयमां पण थतां नथी. एथी द्वैत मनोविकल्पना मात्र ज छे.

जेम महाकाशथी घटाकाशोनी उत्पत्ति छे, तेम परमा-

त्माथी ज, रज्जुसर्पवत्, विकल्पित पृथिवीआदि भूतसंघातनी तथा आध्यात्मिक कार्यकारणलक्षण जीवोनी उत्पत्ति छे.

जेम घटादिनी उत्पत्तिएकरी घटाकाशादिनी उत्पत्ति छे, अने घटादिनो प्रलय थये घटाकाशादिनो प्रलय छे; तेम देहादि संघातनी उत्पत्तिएकरी जीवनी उत्पत्ति छे, अने देहादि संघातनो प्रलय थये जीवोनो, ए आत्मामां ज, प्रलय छे. स्वतः (जीवना उपाधि प्रलय) नथी. (अर्थात् जीवोनी उत्पत्ति तथा प्रलय औपाधिक छे स्वाभाविक नथी.)

जेम आकाशने, अविद्याए अध्यारोपित, रजोधूममलत्वादि दोषवत्त्व छे; तेम आत्माने, अविद्याध्यारोपित बुद्धिआदि उपाधिकृत, सुखदुःखादि दोषवत्त्व अने व्यावहारिक बंधमोक्षत्व छे.

एक ज आकाशमां घट करक अपवरकादि आकाशोनां अल्पत्व महत्वादि रूपो भेद पामे छे, अने तेओनां कार्य,—जलहरणादि अने नाम—घटाकाश, करकाकाश—पण भिन्न छे, ते रूप कृत छे....ते रूपादिभेदकृत सर्वव्यवहार छे, परमार्थथी नथी. परमार्थथी तो आकाशनो भेद ज नथी; अने परोपाधिकृत द्वारविना आकाशभेदनिमित्त व्यवहार छे नहि; तेम आत्मामां देहोपाधि जीवभेदकृत जन्ममरणादि व्यवहार छे. परमार्थथी नथी.

एवुं परमार्थतत्त्व छे. परंतु परमार्थज्ञान दुर्लभ होवाथी ते लोकोए गृहातुं नथी. कारण गमे ते कोइ द्वय वस्तुना धर्मना मिथ्या ग्रहणना आवेशेकरी (आत्मतत्त्वस्वरूपनुं) सुख अनायासे आच्छादाय छे, अने दुःख प्रकट थाय छे. आत्मा, उपनिषद् आचार्योएकरी बहुशः उपदेशाय छे तो पण जाणवाने शक्य नथी. द्वैतविषयथी निवृत्त अने विष-

यान्तरमां अप्रवृत्त (परमार्थदर्शी कोइ विरल ज आत्मस्वरूपने जाणे छे) तेवा परमार्थदर्शीनी स्थिति अद्वय विज्ञानैकरसघनलक्षणा ब्रह्मस्वरूपा थाय छे.

ए (परमार्थ) आत्मतत्त्वनी प्रतिपत्तिना उपायभूत आगमप्रधान, (माण्डूक्य उपनिषद्नुं) प्रथम प्रकरण छे. अने तेमां ॐकारनो निर्णय कर्यो छे.

रज्जुआदि–सर्पादिविकल्पना आस्पद (अधिष्ठान) सम –जेम परमार्थ सत् अद्वय आत्मा प्राणादि (संसार) विकल्पनुं आस्पद छे; तेम प्राणादि आत्मविकल्पना विषय सर्व आत्मप्रपंच पण ॐकार ज छे; अने ते (ॐकार) आत्मस्वरूप ज छे. कारण के ॐकारने आत्मानुं अभिधायकत्व (वाचकत्व) छे.

(मूल उपनिषदार्थ.) "ॐ एम ए अक्षर आ सर्व (अर्थजात) छे. तेनुं (परापर ब्रह्मस्वरूप ॐ अक्षरनुं) उपाख्यान[1] (प्रस्तुत वेदितव्य छे.) भूतभवत्भविष्यत् (जे कालत्रय परिछेद्य) ए सर्व ॐकार ज छे. अने जे अन्यत् त्रिकालातीत (कार्याधिगम्य कालेकरी अपरिछेद्य अव्याकृतादि) ते अपि ॐकार ज छे. १

(शंकरभाष्यमांथी.) अभिधान अने अभिधेय[2] एओनुं एकत्व छे. पण उपरनो निर्देश[3] अभिधानना प्राधान्येकरी कर्यो छे. अवे अभिधान अभिधेयनी एकत्वप्रतीतिअर्थ पुनः अभिधेयना प्राधान्येकरी निर्देश छे. कारण तेम न थाय तो अभिधानने तंत्र अभिधेयनी प्रतिपत्ति (गणाइ) अभिधेयनुं अभिधानत्व गौण छे एम आशंका थाय. एम

---

१ ब्रह्मप्रतिपत्तिना उपायरूप समीप विस्पष्ट कथन. २ वाचक–वाच्य, नाम–नामी. ३ उपदेश.

अभिधान अभिधेयनी एकत्वप्रतिपत्तिनुं प्रयोजन छे. (अभिधान अभिधेय ए बेने) एक ज प्रयत्नेकरी युगपत् (एक ज काले) प्रविलाप करतां तेथी विलक्षण ब्रह्मने (विद्वान्) पामे छे.)

(मूल उपनिषदार्थ) 'सर्व (जे 'ॐकार मात्र छे' एम कथ्युं ते) ए ब्रह्म ज छे. (ए पण परोक्ष ज कथ्युं गणाय तेथी प्रत्यक्ष विशेषेकरी निर्देशे छे केः—प्रत्यक्) **'अयमात्मा ब्रह्म'**[1] आ आत्मा ब्रह्म छे. ते आ आत्मा चतुष्पाद छे. २ (ते चार पादने वदे छे.) (१) जागरितस्थान बहिःप्रज्ञ सप्ताङ्ग (१९) एकोनविंशतिमुख स्थूलभुक्[2] **वैश्वानर** ए प्रथम पाद. ३. (२) स्वप्नस्थान अन्तःप्रज्ञ सप्ताङ्ग एकोनविंशतिमुख प्रविविक्तभुक्[3] **तैजस** ए द्वितीय पाद.' ४ (३) 'ज्यां सुप्त (जन) कई काम (विषय) इच्छतो नथी, कई स्वप्नने देखतो नथी ते सुषुप्त. (एवुं सुषुप्तस्थान छे जेनुं ते) सुषुप्तस्थान (सप्रपंच) एकीभूत प्रज्ञानघन ज (मननुं विषय विषयी आकारे स्पन्दन तेना आयासना दुःखना अभावथी) आनन्दमय (जेवी स्थिति जेणे अनुभवाय ते) आनन्दभुक् चेतोमुख **प्राज्ञ** ए तृतीय पाद. ५

ए (प्राज्ञ ज स्वरूपावस्थ सर्व भेदावस्थ थतां) सर्वेश्वर, ए सर्वज्ञ, ए अन्तर्यामी, ए सर्वनी योनि, अने (ए ज) भूतोनो प्रभव अप्यय (उत्पत्तिलय).' ६

(शांकरभाष्यमांथी). आत्माना परमार्थ अपरमार्थरूप चतुष्पाद छे. तेमां अपरमार्थरूप उक्त पादत्रय, रज्जुसर्पादिसम, अविद्याकृत छे. अवे रज्जुस्थानीय परमार्थरूपने,

---

१ ए महावाक्य छे. २ शब्दादि स्थूल विषयोने भोगवनार. ३ (विषयसंस्पर्शशून्या) वासनामात्ररूपा प्रज्ञावते विविक्त भोग भोगवनार.

सर्पादिस्थानीय उक्तस्थानत्रयना निराकरणवते, श्रुति वदे छे.

(मूल उपनिषदार्थ.) (क्रमप्राप्त चतुर्थपाद जे तुरीय ते) ' अन्तःप्रज्ञ नथी, बहिःप्रज्ञ नथी, उभयतः प्रज्ञ नथी, प्रज्ञानघन नथी, प्रज्ञ नथी, अप्रज्ञ नथी; (एथी तेने) अदृष्ट अव्यवहार्य अग्राह्य अलक्षण अचिन्त्य अव्यपदेश्य एकात्मप्रत्ययसार प्रपंचोपशम शान्त शिव अद्वैत चतुर्थ (तुरीय) माने छे. ते आत्मा ते विज्ञेय छे. ७

(शंकरभाष्यमांथी.) प्रतीयमान सर्प भूछिद्र दण्डादि व्यतिरिक्त जेम रज्जु छे तेम प्रतीयमानपादत्रय–विश्वतैजस-प्राज्ञ–रूपथी विलक्षण तुरीय छे ते तुरीय आत्मा विज्ञेय छे.

"आदावन्ते च यन्नास्ति वर्तमानेऽपितत्तथा ।
वितथैः सदृशाः सन्तोऽवितथा इव लक्षिताः ॥"

माण्डूक्य-वैतथ्यप्रकरण.

जे मृगतृष्णिकादि वस्तु, आदिमां अने अन्तमां होतुं नथी, ते मध्यमां पण नथी, एवुं लोकमां निश्चित छे. तेम आ जगत्‌ना दृश्य (भावना–पदार्थना) भेदो तेओनो आदिमां अने अन्तमां अभाव होवाथी, अने वितथ ज मृगतृष्णिकादिओ सह सदृश होवाथी, तेओ वितथ (असत्य ज छे) तथापि अनात्मविद् मूढोएकरी अवितथ (सत्य) जेवा लक्षित छे.

द्वैत मिथ्या छे, परमार्थथी आत्मा ज एक छे. ए अर्थना उपसंहारमां योगीश्वर गौडपाद वैतथ्य प्रकरण विषये वदे छे केः–

(आ लौकिक वैदिक सर्व व्यवहार अविद्या विषय ज छे एम निष्पन्न थाय छे तो–)

'निरोध' नाम प्रलय नथी, 'उत्पत्ति' नाम जनम नथी, 'बद्ध' नाम संसारी जीव नथी, 'साधक' नाम मोक्षना साधनवान् नथी, 'मुमुक्षु' नाम मोचनार्थी नथी, 'मुक्त' नाम विमुक्त छे बंध जेनो एवो कंई नथी, एम उत्पत्ति अने प्रलय ए बेनो अभाव छे. एटले बद्धादि छे ज नहि, एम ए परमार्थता छे.

मनोविकल्पना मात्र ज उत्पत्ति प्रलय छे. विकल्पनानो क्षय थये अविकल्पितना सत्वनी उत्पत्ति (प्राप्ति) छे.

रज्जुमां सर्पादिवत्, आत्मामां अविद्याएकरी द्वैतनुं अध्यस्तत्व छे. एथी हुं सुखी, दुःखी, मूढ, जात, मृत,…… कर्ता, फली, संयुक्त, वियुक्त क्षीण, वृद्ध, हुं छुं, मारां एओ छे, ए आदिओ सर्वे आत्मामां अध्यारोपाय छे. जेम सर्पधारादि भेदोमां रज्जु अनुगत छे, तेम पूर्वोक्त ए सर्वमां आत्मा अनुगत छे.……एथी अविद्याए अध्यारोपित सुखित्वादि विशेष प्रतिबंधथी आत्मानुं स्वरूपेकरी अनवस्थान छे. (नेति नेति इत्यादि वाक्योएकरी वेदान्तशास्त्र, ते अविद्याकृत प्रतिबंधनुं, निवर्तक छे. ते प्रतिबंध दूर थये स्वरूपावस्थान थाय छे अने ते) स्वरूपेकरी अवस्थान ज श्रेय छे.……निर्विशेष आत्मामां सुखित्वादि विशेषो कल्पित छे. ए आत्मज्ञाने निवर्ते छे.

जेम रज्जुमां 'आ सर्प आ धारा आ दंड' एम रज्जु द्रव्य ज कल्पाय छे, तेम परमार्थसत् अद्वय सर्व विकल्पोना आस्पदभूत आत्मा ज, रज्जुवत्, अनन्त असत् प्राणादि-संसार-रूप विकल्पो कल्पाय छे.

नवते) परमार्थस्वरूपेकरी निरूप्यमाण थये, रहेतुं नथी.

सर्व अनर्थना प्रशमनरूप अद्वय ज शिव अने अभय छे. एथी अद्वैतमां ज स्मृति योजवी.

"तत्त्वमाध्यात्मिकं दृष्ट्वा तत्त्वं दृष्ट्वा तु बाह्यतः ।
तत्त्वीभूतस्तदारामस्तत्त्वादप्रच्युतो भवेत् ॥३८॥"

माण्डूक्योपनिषद्. वैतथ्यप्रकरण.

विद्वान् आम वर्ते छेः—पृथ्विआदि बाह्यतत्त्व अने देहादि लक्षण आध्यात्मिकतत्त्व, रज्जुसर्पवत् अने स्वप्नमायादिवत्, असत् छे; अने बाह्याभ्यंतर आकाशवत् सर्वगत........आत्मा ज सत्य छे, अने 'ते आत्मा तुं छुं' एम तत्त्वने देखीने (ते तत्त्वदर्शी) तत्त्वीभूत थाय, अने तदाराम थाय—बाह्यरमण न थाय. अने तत्त्वथी अप्रच्युत थाय.

जेम कोइ अतत्त्वदर्शी चित्तने ज आत्मत्वरूपे जाणी चित्तना चलनथी आत्माने अनुचलित मानतो, 'अहुणा हुं आत्मतत्त्वथी प्रच्युत छुं' एम तत्त्वथी चलित देहादिभूत आत्माने कदाचित् माने छे. तेनुं मन समाहित थये प्रसन्न आत्माने 'अहुणा हुं तत्त्वीभूत छुं' एम कदाचित् तत्त्वभूत माने छे.

तेम आत्मवित् थता छे नहि. कारण के आत्मानुं एकरूपत्व छे, अने स्वरूपप्रच्यवननो असंभव छे. 'हुं सदा ज ब्रह्म छुं' एम तत्त्वथी अप्रच्युत थाय; आत्मतत्त्वदर्शन सदा अप्रच्युत छे जेने एवो थाय. (३८)

(अपूर्ण)



	ાદય અને નલદમન્તી. (ચતુર્થાવૃત્તિ.) ...	૦-૮—૦
	ારાજ્ય અને મનુસ્મૃતિમાંનો રાજનીતિસાર ...	૦-૮—૦
	ાર્બ્સ જીવન ચરિત્ર (સચિત્ર) (દ્વિતીયાવૃત્તિ.) ...	૦-૬—૦
	સુજ્ઞ ગોકુલજી ઝાલા અને વેદાન્ત.	૧-૦—૦
૫	વિચારસાગર (ગૂજરાતી) (દ્વિતીયાવૃત્તિ) ...	૧-૮—૦
૬	વાર્તિક-લેખન તથા વાચન.	૦-૪—૦
૭	વેદાન્તવિચાર.	૦-૪—૦
૮	કરસનદાસ અને તત્સંબંધમાં વિચાર. (સચિત્ર)...	
૯	ઉત્તરરાજ્યકુમારી, ૧૦ મણિરત્નમાલા, ૧૧ વિપત્તિવિષે નિબંધ	નથી.

ભાઇ શ્રીરણછોડભાઈ ઉદયરામનાં પુસ્તક.

૧	જયકુમારી વિજય નાટક (તૃતીયાવૃત્તિ) ...	૦-૧૨-૦
૨	લલિતાદુઃખદર્શક નાટક (છઠી આવૃત્તિ) ...	૦-૮—૦
૩	નલદમયન્તી નાટક (તૃતીયાવૃત્તિ)	૦-૮—૦
૪	બર્થોલ્ડ (દ્વિતીયાવૃત્તિ)	૦-૮—૦
૫	હરિશ્ચંદ્રનાટક } (દ્વિતીયાવૃત્તિ) ...	૦-૧૨-૦
૬	તારામતીસ્વયંવર }	
૭	માલવિકાગ્નિમિત્ર નાટક	૧-૪—૦
૮	લઘુસિદ્ધાન્ત કૌમુદી. (ગૂજરાતી ટીકાસહિત) ...	૫-૦—૦
૯	હિતોપદેશ (મિત્રલાભ, મિત્રભેદ, વિગ્રહ, સંધિ.) ...	૦-૧૨-૦
૧૦	બાણાસુર મદમર્દન (ઓખાહરણ નાટક) (આવૃત્તિ બીજી)	૦-૮—૦
૧૧	મદાલસા અને ઋતધ્વજ નાટક	૦-૮—૦
૧૨	હરિશ્ચંદ્રનાટકનો સાર	૦-૧—૦
૧૩	રાસમાલા ભાગ બે (ફાર્બસસભાના મંત્રીપાસેથી) ...	૧૫-૦—૦
૧૪	નાટ્યપ્રકાશ	૧-૮—૦
૧૫	પાદશાહીરાજનીતિ	૨-૦—૦
૧૬	પ્રેમરાય અને ચારુમતી	મુદ્રાલયમાં.
૧૭	રણપિંગલ	મુદ્રાલયમાં.
૧૮	વિક્રમોર્વશી ત્રોટક, ૧૯ આરોગ્યતાસૂચક, ૨૦ પ્રસ્તાવિક કથાસમાજ, ૨૧ ગોપાળદાસનાટક, ૨૨ કુલવિષે નિબંધ, ૨૩ સંતોષ સુરતરુ, ૨૪ શેકસપિયર કથાસમાજ (૨૦ મ૦ છો૦)	નથી.

વિક્રયસ્થાન.

મુંબઈ, કાળકાદેવીને રસ્તે. } એન. એમ ઍન્ડ કંપની. પંડિત જયેષ્ઠારામ મુકુંદજી.